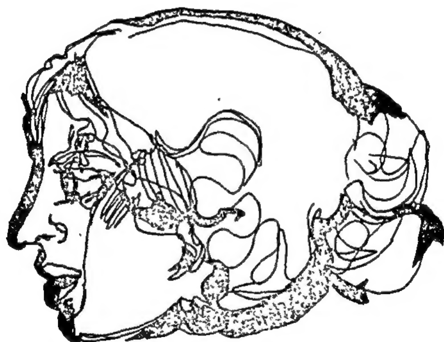
आशापूर्णा देवी



मन का चेहरा



MAN KA CHEHRA
(Novel)
Aashapurna Devi



अनुवाद
ममता खरे



प्रकाशक
रवीन्द्र प्रकाशन
११३१ कटरा, इलाहाबाद-२



मुद्रक
जय हनुमान प्रिंटिंग प्रेस
१-सी. बाई का बाग, इलाहाबाद



आवरण सज्जा
इम्पैक्ट, इलाहाबाद



प्रथम संस्करण : १६८४



मूल्य : तीस रुपये

मन का चेहरा

बंगला भाषा की मूर्धन्य उपन्यासकार और भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित प्रथम महिला साहित्यकार के रूप में आज श्रीमती आशापूर्णा देवी का सुनाम देश की सीमा को लाँघ कर विदेशों में भी लोकप्रिय हो गया है।

'मन का चेहरा' आशापूर्णा देवी का एक अलग तरह का खूब ही रोचक उपन्यास है। हर व्यक्ति का मन अपना अलग चेहरा रखता है जो उसके ऊपरी चेहरे से सर्वथा भिन्न होता है। इसी मूल-भावना को लेकर यह उपन्यास आशापूर्णा देवी ने लिखा है जो उनके पहले के उपन्यासों से सर्वथा भिन्न है अतः मानव मन के मनोविश्लेषण में अद्वितीय और रोचकता में खूब दिलचस्प है। पाठक इस उपन्यास में बहुत सी नवीनता पायेंगे।

आशापूर्णा देवी की अन्य रोचक कृतियाँ भी हम जल्दी ही पाठकों को भेंट करेंगे।

मन का चेहरा

□

वे हमेशा ही थे।

रामराज्य के पहले तो थे ही, शायद रामराज्य में भी थे। रामराज्य में थे 'गायब' हो गए हों इसे मात्र कवि की कल्पना ही कहनी चाहिए।

रामराज्य में भी थे।

उस वक्त भी ऐसे ही दलबद्ध होकर घूमते थे। घूमा करते थे आश्रमवासियों को आश्रमपीड़ा पहुँचाते हुए। अतएव तब वे लोग पंचेन्द्रीयजयी मुनी-ऋषियों का अभिशाप बटोरते थे।

वात्स्यायन के युग में, घुंघराले बाल बढ़ाए, गले में फूलों की माला डाले और सर्वांग में चन्दन लगाए, पालतू चिड़ियों का पिंजड़ा हाथों में लटकाए, गुन-गुना कर गाना गाते हुए नगर प्रदक्षिणा करते हुए जब घूमते थे, तब पंडितों की घृणा बटोरते थे।

अभी उस दिन तक, ये लोग ताश और चौपड़ खेल कर, दूसरों के तालाबों में कँटिया डाल कर और शौकिया नौटंकी में टप्पे गाकर गाँव भर की छिः छिः बटोरते थे। और इस युग में....उन्हें समाज धिक्कार रहा है। टेरीलिन की पेंट और टेरीकॉट की शर्ट पहने जगह-जगह दल बाँधे, ये लोग असीमित धुएँ उड़ाया करते, इसके साथ ही उड़ा देते विश्व-संसार का सब कुछ।

इसीलिए यथानियम समाज का धिक्कार बटोरते हैं। लेकिन इस धिक्कार से उनका कुछ आता-जाता नही। अपने विषय में वे युग-युग से सचेतन हैं। उन्हें अच्छी तरह से पता पता है कि वे कभी भी समाज के लिए प्रीतिकर नही हैं बल्कि जबरदस्त किस्म के भीतिकर हैं।

लेकिन उनके इसी जाति से विभक्त हो, कुछ लोग मिश्रित जाति की रचना कर, समाज में कही न कही थोड़ी बहुत जगह बना लेते हैं। उनमें से कभी कोई अमीरों की मुसाहिबी करते, कभी राजनीति करते, कभी लावारिस मुर्दे जलाते, कभी मर कर भूत हो गए लोगों का जन्मोत्सव मनाते। और भी बहुत कुछ करते होंगे वे लोग, क्योंकि उनमें मिलावट आ गई है। लेकिन जो अटूट मिलावटहीन हैं यह वे सब नही करते हैं। बल्कि विश्व-संसार को गालियाँ देते हैं। जीभ को छोड़ कर उनका सब कुछ निष्क्रिय है। इसीलिए वे लोग जहाँ-तहाँ गोलाकार खड़े हो जाते हैं और बातें करते हैं।

बड़ी-बड़ी बातें, लम्बी-लम्बी बातें, कड़वी और स्वादहीन बातें, इल्लत की बातें, शालीनताहीन बातें। बातों के नशे में ही वे मशगूल रहते हैं। तब, अब,

चिरकाल, असल में ये लोग एक ही बिरादरी के होने पर भी हर युग में उनके अलग-अलग नामकरण हुए हैं।

इस युग में इनका नाम है रॉकबाज (चबूतरे पर बैठने वाले)। कब से उनके हित में बंगला अभिधान में यह नया शब्द जोड़ा गया है, यह कहना कठिन है। अब तो इनसे परेशान होकर सभी बारामदे वाले मकान के मालिकों ने ग्रिलों से बारामदे घेर-घेर कर इन्हें बेघर कर दिया है। अब फुटपाथ का सहारा लेने पर भी उनका यह नाम टिका है।

रॉकबाज—जिनकी आदि और अकृत्रिम संज्ञा है बेकार।

अभी कुछ दिन पहले तक इसी दल का परिचय वहन करते हुए, फुटपाथ को जगमगा देने वाले गप्प-शप में पार्थो नाम का लड़का अंश ग्रहण करता था। लेकिन अब नही कर रहा है। आगे भी नहीं करेगा। क्योंकि अब उसकी बेकारी खत्म हो गई है। एक ऐसे ही चाचा पुकारे जाने वाले के कल्याण से, उसे एक लम्बी-चौड़ी, हृष्ट-पुष्ट तन्ख्वाह वाली नौकरी मिल गई है।

इन चाचा को पार्थो कभी भी पसन्द नही करता था। बल्कि दोनों आँखों का जहर समझता था और ऐसा जहरीला समझने का कुछ कारण भी था। एक तो अमीर-मात्र से उसे घृणा थी, उस पर 'संजय काकू' (पहले 'काकू' शब्द पर वह उल्टी कर डालता था, अब नहीं करता है। अनायास उच्चरण करता है) के प्रति अपने माँ-बाप की गद्-गद्, प्यारभरी भंगिमा....वही घृणा आग सी जल उठती।

लेकिन परिस्थिति बदली।

संजय काकू ने वही मोटी तन्ख्वाह की नौकरी-पकड़े हाथ को पार्थो की तरफ बढ़ा दिया। पार्थो क्या उस हाथ को धकेल कर हटा दे, अमीर आदमी हैं, इस-लिए ? या पार्थो के माँ-पिता उसके प्रति गद्‌गद् भाव रखते हैं इसलिए ? यह तो संभव नहीं न ? अतएव पार्थो ने उस बढ़े हुए हाथ को आग्रहपूर्वक पकड़ लिया है। पारस पत्थर के स्पर्श से जैसे हर लोहा सोना बन जाता है, वैसे ही उस नौकरी के स्पर्श से सारा विष अमृत बन गया।

उसके बाद और भी हुआ।

शहर के वाहन-दुर्दशा का स्मरण कर और नयी नौकरी पर निश्चित समय में हाजिरी देने की महत्ता को चिन्ता कर, भद्र महोदय आफिस जाते समय पार्थो को अपनी ही गाड़ी पर ले जाते और लौटते समय 'हाजिरी' की चिन्ता न रहने पर भी, 'जब अलग से पेट्रोल खर्च नही करना पड़ रहा है तब लड़के को ले आने में कौन सी असुविधा है ?' कह कर ले आते। उसके बैंक में बहुत सा रुपया इकट्ठा है, इस अपराध को सोच कर क्या पार्थो अब भी इस आदमी पर नाराज रहे ?

पार्थो आदमी है या जानवर ?

हांलाकि अपने बनाए हुए रिश्ते के भइया के लड़के को जो संजय घोप ने नौकरी दिलाई है वह बिल्कुल अलौकिक महिमा नही है। रॉकबाज था, इसके मतलब यह तो नही कि पार्थो मूर्ख और लफंगा था। जिस कुर्सी पर जा बैठा है, उसके उपयुक्त विद्या और क्षमता उसमें है। सिर्फ उस कुर्सी के कमरे की चाभी का पता वह नही जानता था और इसीलिए बेकारों के दल में नाम लिखा कर विश्व को नकारा करता था और जीने का कोई अर्थ नही ढूंढ पाता था।

अब यद्यपि पार्थ ने जीते रहने का अर्थ खोज निकाला है। और अभी तक जो ढूंढ नही सका है, उनके लिए गहरी वेदना कर अनुभव करता है।

हाँ, इतना मनुष्यत्व पार्थो में है।

पार्थो अपने पुराने साथियों पर करुणा नहीं करता है या अवज्ञा करने भी नही बैठा है। वह उनके लिए वेदना अनुभव करता है।

उनके सामने चमचमाती मोटर गाड़ी का दरवाजा खोल चढते उतरते, पार्थो को वास्तव में लज्जा आती है। एकान्त में, न जाने किससे प्रार्थना करता है—ठीक इस वक्त वे वहाँ न रहें। लेकिन ऐसा ही भाग्य था कि दोनों वक्त उनकी निगाहों में पड़ जाता। उनका तो कोई ठिकाना नही, अतएव दिखाई न पड़ें तो जायें कहाँ ?

आते जाते देखता, या तो वे गली की मोड़ के कोने के फुटपाथ पर या बिल्कुल सड़क के ही बीचोबीच, या तो सामने की चाय का दुकान पर, ठीक पहले की तरह गप्पें हांक रहे हैं। पार्थ न देखने का बहाना बना जल्दी से गली में घुस जाता। उस वक्त पार्थो देखने से, पकड़ गया चोर सा लगता। इस 'पकड़े गये चोर' के चेहरे का अनुमान पार्थो स्वयं लगा सकता था, इसीलिए उसे यह जल्दी रहती। जैसे जल्दीबाजी की चक्षुलज्जा से बच निकलना।

पहले दो दिन पार्थो ने बार-बार कहा था—'नही नहीं, काकू, इसके कोई माने नही है। आप हर रोज गाड़ी लेकर आएँ, यह नही हो सकता है। इतने आदमी बस की भीड़ धकेलते हुए जाते हैं....'

काकू बोले—'अहा, उससे क्या होता है ?'

संजय घोप आदमी चतुर है।

अवसर समझ कर वह कभी मितवाक्, कभी स्मितवाक्, कभी अतिवाक्। उनकी अतिवाक् मूर्ति तब दिखाई पड़ती है जब वे पार्थो के पिता अर्थात् अपने क्षितिश दा के साथ गप्पें हांकते होते। हांलाकि उस कहानी के नायक वे स्वयं होते।

उस उज्ज्वल नक्षत्र सदृश्य नायक के अति मानवीय कार्यकलाप और कहानी सुनते-सुनते पिताजी का मुंह खुल जाता और माँ की आंखों की पलकें न झपकती।

अभी तक इस दृश्य से पार्थो और उसकी छोटी बहन भद्रा दूर रहते थे—अब पार्थो अक्सर उस बैठक में नज़र आता। भद्रा यथा-रीति अलग। भद्रा अब अपने भाई को माँ-पिता के दल में धकेल कर स्वयं दलविहीन निःसंग जीवन यापन कर रही है।

पार्थो को इसलिए बुरा लगता। वह बीच-बीच में कहता—'इस आदमी को जितना बेकार का बकवास करने वाला सोचता था, वैसा नहीं है—तेरी क्या राय है ?'

मुँह दबा कर भद्रा हँसती—'यह भी कोई कहने की बात है। तुम जैसे एक मूर्ख को जब ऐसी एक 'उज्ज्वल भविष्य' वाली कुर्सी दिलवा दी है।'

पार्थो हिचकते हुए कहता—'वह बात नहीं कही जा रही है। लेकिन क्वालिफिकेशन रहने से ही क्या नौकरी नामक वस्तु मिलती है ?'

'यही बात तो मैं भी कह रही हूँ भइया। भद्र महाशय की बात ही और है। पारखी ही रतन पहचान पाता है। देखते रहना, अन्त में तुम से रत्न को कहीं दामाद न बना लें ?'

तब पार्थो अप्रतिम नहीं रह पाता—बिगड़ जाता है। पार्थो को लगता कि इस नौकरी को पाने की वजह से उसके दोस्तों की तरह भद्रा भी उससे ईर्ष्या कर रही है।

हाँ, कर ही तो रहे हैं।

दोस्त लोग ईर्ष्या कर रहे हैं। मामला अब सन्देह के बीच नहीं, प्रत्यक्ष है। पार्थो के आने-जाने के रास्ते पर, उनके ईर्ष्या से जर्जर मन के तीखे मन्तव्य छिटक कर फैल जाते।

'ये....चले।'

'राजा के दामाद की गाड़ी देख रहे हो बेटा !....साले ने गले में फन्दा डाला है रे ! यही फन्दा अन्त तक प्रेम की फाँसी में बदल जाएगा बेटा, तब समझ में आएगा !'

हालांकि ये सारे मन्तव्य परोक्ष रूप से किए जाते। जैसे कोई कान के पास ही कह उठता। आँखें मिलने पर भाषा बदल जाती।

तब वे लोग कहते, 'बढ़िया सूट बनवाया है बाबा, मक्खी तक फिसली जा रही है।' कहते—'बढ़िया नौकरी हथियायी है पार्थो दा, घेलुए में एक पकड़ने वाला भी, बढ़ानेवाला ! दादा, लड़की देखने में कैसी है ?'

पार्थो यूँ ही उनके सामने अपने को अपराधी समझता, लेकिन इस तरह का प्रश्न सुन कर खीझे बगैर उपाय क्या था ? फिर भी यथासंभव खीझ को छुपा कर कहता—'वह महाशय अचानक आज ही तो मुझे बढ़ावा देने वाले नहीं बन बैठे हैं बाबा ! पारिवारिक चिकित्सक की तरह पारिवारिक बढ़ावा देने वाला।

देखा तो पहले भी था न !'

'पहले देखा था, यह नहीं जानता हूँ बेटा। लेकिन अब देख रहा हूँ। अब भावी जमाता के प्रति क्या स्नेह हैं। क्या हमदर्दी है।'

'भद्र महाशय मेरे चाचा हैं।' पार्थो चेहरा गम्भीर बना लेता।

पहले संजय के लिए 'वह आदमी' कह कर काम चलाता। दोस्तों से कहता— 'वह आदमी अब घर में घुस, महफिल सजा कर बैठा हैं, विदा हुए बगैर, यह शर्मा अन्दर नहीं घुमने का।'

और भद्रा से कहता—'इस आदमी' को आए कुछ कम समय तो नहीं हुआ है, तब से क्या इतनी बातें कर रहा हूँ रे ?'

लेकिन अब उसके लिए 'भद्र महाशय' शब्द मुँह से निकल जाता है। शायद अब पहले की तरह अवज्ञा करते हुए बुरा लगता हैं। रंगबाज होने की वजह से विवेकहीन तो नहीं हो गया है। उसी विवेक के वश होकर पार्थो गम्भीर आवाज में कहता—'भद्र महाशय मेरे चाचा हैं।'

'चाचा कैसे ?' वे लोग हा हा करके हँस उठते—'बोल 'काकू'। चुक चुक। अहा। काकू सी कोई चीज हो सकती है ?'

इतना सुन कर आक्रमण होना।कि नौकरी पाने के बाद ही नहीं हुआ था। यह हुआ है उस गाड़ी पर चढ़ कर 'आने-जाने' के बाद से। अपने ही दल का एक, उस दिन तक जो लड़का, उनके साथ फुटपाथ पर खड़ा होकर जमघट करता था और शहर के हर गाड़ीवालों के बारे में कठोर मन्तव्य करते हुए उनकी गाड़ी के ध्वंस होने की कामना करता था—वह अचानक गाड़ी पर चढ बैठा ? असह्य नहीं है ?

पार्थो ही ज्यादा बोलता था। खासतौर से काकू की गाड़ी को। कहता— 'जानते हो, मेरी दादी जब किसी पर नाराज हो जाती थी तब कहती थी, 'इतने लोग मर रहे हैं और उसकी मौत नहीं आती है रे।' उस गाड़ी को देख कर मुझे दादी की वही बात याद आ जाती है। इतनी गाड़ियों का एक्सीडेण्ट होता है और उसका ही नहीं होता है ?'

लेकिन अब तो पार्थो ऐसी बात नहीं कह सकता है। अब तो यही गाड़ी पार्थो को आश्रय दे रही हैं, आराम दे रही है, बढ़ावा दे रही है। पार्थो से यह तो छिपा नहीं कि लोग बसों में किस तरह से लटकते हुए जाते हैं। पार्थो को वही परिश्रम नहीं करना पड़ रहा है। पार्थो ने सौभाग्यवानों की कापी में नाम लिखवाया हैं।

फिर भी, बिल्कुल मन की गहराइयों में झाँकने पर क्या इसका उल्टा ही नहीं दिखाई पड़ता है ? पार्थो जब देखता है, फुटपाथ के उस जमघट में या चाय की दुकान के भयानक तर्क के हल्ले में यथावत सब कोई है, सिवा के, तब

क्या पार्थो को नहीं लगता है कि वह स्वर्गभ्रष्ट हो गया है ?

वैसा ही लगता है।

अचानक पार्थो के फेफड़ों को धकेल कर दीर्घश्वास निकल आता, अचानक मन में हाहाकार कर उठता।

शुरू शुरू में पार्थो ऑफिस जाने से पहले और बाद में भी, शर्माया-शर्माया सा यहाँ आकर खड़ा हुआ था, लेकिन न जाने क्यों, अपनी पुरानी जगह उसे खोजने पर भी नहीं मिली। जैसे पार्थो के नाप भर की जो जगह थी, एक बार उसके हटते ही वह जगह भर गई हो।

तब तक पार्थो काकू की कार पर नहीं जाता था, इसीलिए उसके आकर बैठते ही ये लोग हिल-डुल कर बैठते। कहते—'वा....वा...., खूब हथियाया है! अब इन भाग्यहीनों के लिए भी एक आध कुर्सियों की खोज करो न बेटा! यह जो तुम्हारे काकू या कौन है, उनके हृदय में चाकू चलाओ न यार....'

'चाकू!'

'अरे इसके यही मतलब हुए। करुणा भरे कण्ठों की आरी कह सकते हो। उसी को चला-चला कर अगर जरा सी भी करुणा धारा बहा सको।'

पार्थो ने कहा—'दुर, ऑफिस अच्छा नहीं लग रहा है। जैसे पानी की मछली को किनारे आने पर लगता है।'

निखालिस सच बात कही हो, ऐसी बात न थी....खूब अच्छा लग रहा था। सुबह जल्दी से दाढ़ी बना कर, नहा कर, खाने की मेज के सामने आ बैठने में इतना रोमांच है, कभी जानता था? देर से खाना खाने की बात पर हर रोज ही माँ की डाँट सुननी पड़ती थी।

लेकिन दोपहर खत्म होकर जब तक प्रायः शाम होने न लगती, खाने के लिए आने की इच्छा न होती थी। उस वक्त फुरसत भी कहाँ थी? बेकारों के बहुत 'जरूरी' काम रहते हैं, वह तो रहते ही थे। सुबह काफी देर तक चाय की दुकान पर गप्पें हांकने के बाद, नहाने-खाने के वक्त पर, वे अपना मोहल्ला छोड़ दूसरे मोहल्ले का चक्कर काटने निकलते। कड़कड़ाती धूप में एस्प्लेनेड में कागज का स्ट्रा लगा कर वे कोकाकोला पीते, या अचानक दो बजे प्रस्ताव पास करते—'चलो बेहाला घूम आया जाए', उसके बाद दोपहर बाद शाम को घर लौटना।

माँ कहतीं—'चावल अब बरबाद हो गया है। गरम पानी पर रखे रखे....'

बेहिचक उसी ऐंठे चावल में दाल सानते हुए पार्थो ने कहा—'अपदार्थ के लिए पदार्थमुक्त चावल....हुँ....खाने को मिल रहा है यही क्या कम है?'

माँ गुस्से से भर कर कहती—'क्यों, ऐसी बात क्यों कह रहे हो? कमाते नहीं हो, इसलिए तुम्हारी कोई अवज्ञा कर रहा है?'

'कोई क्यों करेगा? मैं खुद कर रहा हूँ।'

'रहने दो, बहुत हुआ। दया करके सब खा लो!'

लेकिन सब खाना संभव न हो पाता। इस बीच कई बार चाय पी चुका था, दो बार कोकाकोला। और सिगरेट की तो बात ही नहीं....पैकेट-पैकेट जल चुका था, उड़ चुका था।

इन रोकबाजों के इन सब रसदों के लिए पैसा कहाँ से आता है, भगवान ही जानता है। उनकी सारी परेशानी तो 'बेकार' होने की वजह से है। इस युग का सारा पाखण्ड और धोखेधड़ी की खबर जानने के बाद युग-यन्त्रणा से छटपटा रहे हैं—इसी एक मन के माफिक नौकरी की कमी से न? फिर भी न जाने रह-रह कर कहाँ से, चाय का, ठंडे शरबत, सिगरेट, बस का किराया, सिनेमा, गाने की महफिल या खेल के मैदान के लिए टिकट आ जाते हैं।

मिलते हैं और इसी वजह से ऐसे भयकर 'काम' में वह लोग लगे रहते कि गृहस्थी का एक विशेष जरूरी काम करने का उनके पास समय नहीं रहता। पार्थो का हाल भी वही था—अर्थात् समय न था।

एक तिल समय न था।

जब कि पार्थो लोग कोई बड़े आदमी न थे कि दो-चार नौकर-चाकर रहे हों। पार्थो की माँ की एक ठीके की नौकरी के सहारे ही गृहस्थी चलती है। फिर भी पार्थो ने किसी दिन भी यह नहीं सुनना चाहा था—बाजार जाना है, राशन लाना है, महीने भर का सामान खतम होने पर आया है।

लेकिन अब परिस्थिति उल्टी है।

अब पौने नौ बजे जब खाना खाने बैठता तब बड़े होशियार लड़के की तरह कहता—'माँ, उस मोहल्ले से कुछ ले आना है क्या?'

पौने नौ बजे खाना खाने पर भी, शुरू-शुरू में फिर भी सुबह-सुबह चाय की दुकान का चक्कर लगाने गया था, लेकिन पहले जैसी बात अब न थी। अपनी छोड़ी हुई जगह पार्थो दुबारा ढूंढने पर भी न पा सका था।

शायद इसीलिए लहरों के साथ जीवन की तुलना की जाती है। जो लहर जब तक जगह पर दखल जमा सके....हटे कि खोया। पुरानी जगह पर फिर नहीं लौट सकते।

शायद इसीलिए सुबह उस चाय की दुकान के अड्डे पर आ बैठने पर भी पार्थो अपने को कैसा-कैसा 'स्वर्गच्युत-स्वर्गच्युत' सा महसूस करता और तब का कहा वाक्य—'दुर, ऑफिस-वॉफिस अच्छा नहीं लगता है'—उस क्षण सच ही लगता। जब लगता इस अड्डे को छोड़ कर अभी जाना पड़ेगा, तभी, उसी वक्त, यह अच्छा न लगने की अनुभूति और गहरी हो उठती।

लेकिन घर आते ही मनोभाव बदल जाता। तब लगता—'धत्, किन बेकार की बातों में समय बिता आया। अब नहाने खाने का भी वक्त न रहा।'

तब बार-बार घड़ी देखते हुए खाना खाने के बीच स्वर्ग ढूंढ़ पाता। खैर, उस द्विविधा-द्वन्द्व का अवसान हुआ है। कार चढ़ने वाला मनुष्य बनने के बाद से सुबह निकलने का झंझट ही नहीं रहा। संजय घोष नामक जाना माना आदमी क्या पार्थो के दरवाजे पर आकर खड़ा रहेगा और वह भी इसलिए कि पार्थो उनकी कार पर चढ़ कर उन्हें कृतार्थ करेगा? छिः छिः।

पार्थो आधे घंटे पहले से तैयार होकर बैठा रहता है। संजय काकू की कार का हार्न सुनते ही बाहर निकल आता है। वे मृदु हास्य द्वारा प्रसन्नता प्रकट करते—'गुड।'

इतना ही।'

लेकिन इतना क्या कम है?

सुबह की बात रहने दी जाए तो शाम के अड्डे में आना कभी कभार हो जाता है। उन लोगों के पास एक 'हाय-हाय' का सा भाव लेकर आ खड़ा होता, उनकी बातों में नाक डालने की कोशिश करता, लेकिन थोड़ी-सी शून्यता मुट्ठी में पकड़ने की सी व्यर्थ चेष्टा होती। 'चलूं' कह कर चला आता।

आज एक घटना घटी।

आज संजय काकू बोले—'आज मुझे कार लेकर श्रीरामपुर दौड़ना पड़ रहा है। साली की लड़की की शादी है। समझ ही रहे हो, मामला कितना गम्भीर है? तुम फिर....'

शर्म से मर सा गया पार्थो। बोला—'जरूर-जरूर! रोज-रोज आप....'

'इसके लिए मुझे अलग से कोई मेहनत तो नहीं करनी पड़ती है', कहते हुए, 'अच्छा टा-टा' की भंगिमा में हाथ हिलाते हुए कार हांक ले गए संजय काकू।

पार्थो ने डलहौजी की सुनहली शाम की ओर देखा....पार्थो को अचानक जैसे मुक्ति पाने सा आनन्द हुआ।

पार्थो के मुंह से निकल गया—'अहा।'

लगता है पार्थो नाना प्रकार के उल्टे-सीधे उपादानों से मिल कर बना है। वरना जो पार्थो हर रोज कीमती कार की नरम गद्दी पर आराम से शरीर ढीला कर बैठे-बैठे सारे रास्ते चमगादड़ों की तरह बस पर लटकते लोगों को देखता था और अपने सौभाग्य की बात सोच कर चैन की साँस लेता था, वही आज अचानक उसी गद्दी से वंचित होने पर भी क्यों इतने आनन्द का अनुभव कर रहा है?

न जाने क्यों लग रहा है आज बड़े सुख का दिन है।

स्नेह और हित-चिन्ता का बन्धन कोई आसान बन्धन नहीं है। शायद दासत्व के बन्धन सा ही कड़ुआ स्वाद है उसका। पर आश्चर्य की बात तो यह है कि इस बन्धन से छुटकारा पाए बगैर यह पता तक नहीं लगता है कि इसका स्वाद इतना खराब है।

ऐसा किसी के साथ न होने पर भी पार्थो के साथ?
कारण है पार्थो नानाविध उल्टी-सीधी चीज़ों से मिल कर बना है।

जिनकी अवस्था देख पार्थो वेदना का अनुभव करता है, स्वयं उ...
होकर चले आने के कारण हाहाकार करता है उसका मन। अद्‌भुत बात है न।

अद्‌भुत है, इसीलिए तो आज अचानक मुक्ति की परिस्थिति में बहुत दिनों बाद, ढलती शाम, पार्थो को बहुत सुन्दर लगी।

एक भीड़-भरी बस पर चढ़ कर आनन्द से रोमांचित हो उठा। और तभी देखा उसी भीड़ में अतिन, शुभेन्दु और टूटू खड़े हैं। उसे फिर एक बार आज की शाम पर प्यार आया। उसे लगा आज उसे खोया हुआ स्वर्ग मिल गया है।

उसी समय पार्थो ने मन ही मन प्रतिज्ञा की—न, अब उस संजय घोष के चंगुल में नहीं फँसूंगा। इसी भीड़ में धक्कापेली करता हुआ आना जाना करूँगा।

क्यों न करूँ?

नौकरी लगवा दी है, बहुत अच्छा किया है। लोग तो ऐसा किया ही करते हैं। बड़े आदमी के सिफारिश के बिना किसे कब नौकरी मिलती है? इसके मतलब यह तो नहीं कि और सारे सहकर्मियों का चक्षुशूल बनाए उसे कार पर बैठा कर ला रहे हैं, लौटा ले जा रहे हैं।

हालाँकि संजय घोष इस दफ्तर के कोई नहीं—यहाँ उनका प्रभाव था इसीलिए पार्थो को प्रवेशाधिकार मिला है। यहाँ के मालिक होते तो खैरियत न थी। दूसरे लोग धिक्कारते-धिक्कारते जीवन को अंधकारमय बना डालते, क्योंकि उनका आक्रोश बढ़ जाता। इस वक्त आक्रोश नहीं, ईर्ष्या है। इसी ईर्ष्यावश मिस्टर मुखर्जी कभी-कभी मुस्कुरा कर कहते—'महाशय, मुझे कभी-कभी इस बात का शक होता है कि पुरुष के अलावा आप और कुछ तो नहीं? हर रोज नियमपूर्वक दो वक्त कार पर लिफ्ट देना—यह तो किसी पुरुष जाति के भाग्य में बदा नहीं है। वे आपके साथ क्या करते हैं? गंगा के किनारे हवा खाते हैं जाकर? मैदान में रुमाल बिछा कर बैठाते हैं? या बी० टी० रोड, बी० टी० रोड पर मनों पेट्रोल जला कर वह मीलों घूमा करते हैं? जरा बताइए महाशय, सुनें तो।'

पार्थो सिर्फ इतना ही कहता—'बस, इतनी सी बातें कह कर रुक गए? और कुछ नहीं याद आ रहा है? फिर ये कैसी कवि-कल्पना?'

'मजाक नहीं महाशय! आप हम लोगों के लिए 'प्रसंग' हैं।'

'खुशी की बात है! बंगाल में 'प्रसंग' लेकर इतनी खींचातानी है, मैं नहीं जानता था। लेकिन सिर्फ एक बात आप कैसे भूल गए, जरा बताइए? मुझे तो अच्छी तरह याद है—कहा था वे मेरे चाचा लगते हैं।'

'और महाशय उस बात को छोड़िए। आप मुखर्जी, वह घोष—किस तरह के चाचा हुए बताइए? या तो बनाए हुए या बड़ी दूर के किसी तरह के असवर्ण

घटना का मामला होगा—यही न ? उसी पापा का इतना स्नेह ! न भई, आपका स्टार ही आपको....'

पार्थो जब 'रॉकवाज' था, तब पार्थो तीक्ष्ण तीव्र किस्म की बातें कह सकता था। ऑफिस में आने के बाद से उसे शरीफ आदमी बनना पड़ा है। अथवा पार्थो 'युग्यन्त्रणा' से छुटकारा पाकर शरीफ आदमी बन गया है। इसीलिए वह इन बातों का उचित उत्तर नहीं दे पाता है कि एक ही बार में ठंडा कर दिया जा सके।

भद्र, सभ्य पार्थो इसीलिए धीरे से मुस्कुरा कर कहता—'तब तो मुझे कोई उत्तर ही नहीं देना पड़ा। अपने आप ही अपनी बात का जवाब दे दिया है। स्टार !'

किसी-किसी से हालांकि कहता है—'अरे भाई पारिवारिक मित्र हैं। मेरे पिताजी को मानते हैं, इसीलिए कहते हैं, जब आने-जाने के रास्ते में दफ्तर है तब असुविधा की क्या बात है ?'

संजय घोष भी तो यही कहते हैं—'असुविधा कैसी ? रास्ते पर ही जब है....'

लेकिन असल में रास्ते में दफ्तर उनको इच्छा से पड़ जाता है। यह रास्ता कष्टकल्पित रास्ता है। लेकिन वह कहते हैं—'ट्राफिक जाम के झंझट से बचने के लिए ही यह रास्ता चुना है।'

भद्रा कहती—'मुझे पथभ्रष्ट करने के लिए ही इस रास्ते का चुनाव किया गया है, समझे ?'

पार्थो बिगड़ जाता—'ऐसा ही अगर है, तेरा कौन सा नुकसान हो रहा है ?'

'राम भजो। मेरा क्या ?' भद्रा कहती—'लेकिन महान् हृदय वाले लोगों के हृदय को, दूसरों की क्षति, बुरी लगती है।'

'मेरी कोई क्षति नहीं हो रही है।'

'हो रही है रे भइया, हो रही है—सिर्फ तू जान नहीं पा रहा है'—कहती हुई वह हँस कर लौट जाती।

नौकरी शुरू करने के बाद से बेवकूफ बन गया पार्थो, इस बात का वह उत्तर न दे पाता। सिर्फ मन ही मन सोचता—किसी को कोई मौका मिले, यह दूसरों को अच्छा नहीं लगता। नितान्त अपने आदमी को भी नहीं। यह पृथ्वी आश्चर्य-जनक है।

अपनी बहन के व्यंग्य-हास्य का उत्तर पार्थो क्यों नहीं दे पाता ? सचमुच बेवकूफ हो गया है इसीलिए क्या ? या 'क्षति नहीं हो रही है', जैसी दंभोक्ति के कारण साहस नहीं कर पाता है ?

नहीं तो आज भुक्ति-मुक्ति मनोभाव से यह प्रतिज्ञा कैसे कर ली—'अब उस

शेरे-उदारता का मैं कृतघ्न नहीं बनूंगा, इस भीड़ भरी गाड़ी पर ही आना-जाना करूंगा।'

बस में बात न हो सकी, होना संभव भी नहीं था। सिर्फ लोगों की दीवार के किसी एक सूराख से अतिन से एक बार आंखें मिलीं। अतिन की आंख-मुंह पर एक जिज्ञासा जाग उठी, पार्थो की आंखों में खुशी का इशारा। अपने पड़ोस के मोड़ पर बस से उतरते ही भेंट हुई। टुटू बोला—'क्यों भइया, तुम राजा के दामाद होकर आज भाग्यहीनों की इस गाड़ी पर? मामला क्या है?'

अचानक पार्थो ने डींग हांकी। मानो पार्थो को लगा, वह डींग हांक रहा है। पार्थो बोला—'मामला क्या होगा? सिर्फ पुनर्मूषिको भव! सुख खत्म हो गया।'

न जाने क्यों कहा।

इनके स्वर्ग में ज़रा-सा प्रवेशाधिकार पाने के लिए?

टुटू गर्दन टेढ़ी कर, पैन्ट की जेब में हाथ डाल, कायदे से खड़े होते हुए बोला—'सो, खत्म हुआ क्यों?'

'भाग्यहीन का भाग्य! मालिक को दूसरे काम से दूसरे रास्ते से जाना पड़ा है।'

पार्थो बुद्धू नहीं है। वह जानता है कि आगामी कल ही उसे गाड़ी का सामना करना पड़ सकता है। वह जितना भी क्यों न कहे, 'मैं स्वयं जाऊंगा, आप अब मत आइएगा, इससे मुझे और असुविधा होती है,' फिर भी संजय घोष की परोपकारी प्रवृत्ति से आसानी से छुटकारा मिलेगा—शक है।

लेकिन कहा इसी तरह से।

और उसी क्षण पार्थो को लगा—'काश, अगर मैं अभी कह सकता....बात यह है कि मेरी नौकरी चली गई है।'

इस नौकरी चले जाने की खबर सुनाने से पार्थो की इनके आगे इज्जत रह जाती। पार्थो फिर इनका दलमुक्त हो सकता था।

लेकिन यह तो कहा नहीं जा सकता है। इसीलिए बोला—'गाड़ी का सुख खत्म हो गया है।'

कुछ इस आशा से भी कहा गया कि आज ही रातों रात, ... खत्म होने के सुख का संग्रह कर लेगा।

टुटू बोला—'ईश! हाय हाय....आदत बिगाड़ कर.....'

पार्थो बोला—'होगा ही। अमीरों की रीति-नीति तो ... तरह है।'

क्यों पार्थो ऐसी बातें कह रहा है, ... के नशे में आकर कह रहा है।

वे तीनों ज़ोर से हँस उठे—अनिल, शुभेन्दु और टूटू।

पार्थो भी खींच-खींच कर हँसा। फिर बोला—'फिर? तुम लोग कहाँ गए थे?'

'हम लोग?' उन्होंने एक साथ दीर्घ श्वास छोड़ी—'भाग्यहीन जहाँ जाते हैं। सिनेमा।'

'सिनेमा? इस भरी दोपहरी में?'

कहने के बाद ही दाँतों से जीभ काटी। पहले खुद भी भरी दोपहरी में कम सिनेमा नहीं देख चुका है। इधर तो कितने दिनों से सिनेमा ही नहीं देखा है। आश्चर्य है। छुट्टी के दिन भागते किधर से हैं?

याद करने की कोशिश की।

कुछ इतवार संजय काकू के घर 'एक साथ जरा दाल-भात' खाने के निमन्त्रण पर गया है, लेकिन बाकी? सोच कर भी याद न कर सका। न जाने कब—छुट्टी की दोपहर सो कर काट दी थी, किस-किस दिन शर्ट-पैन्ट में साबुन लगाया, इस्त्री किया था और शाम को पुराने अड्डे पर जाकर खोई चीज़ को मुट्ठी में पकड़ने की व्यर्थ की कोशिश की थी।

फिर भी क्या सारी छुट्टियों का हिसाब मिल पाया?

पार्थो ने जीभ काट ली, इन लोगों ने लेकिन पार्थो को काट नहीं खाया। उन लोगों ने सिर्फ कहा—'चार्ली की एक फिल्म एक ही दिन के लिए आई थी। तू तो अब इनके आस-पास नहीं फटकता है।'

'फटकूँगा क्यों नहीं—वाह! मैं तो जानता ही नहीं था।'

'वही तो—जानने की इच्छा हो तब न?'

टूटू बोला—'लेकिन पार्थो, तूने बेटा खूब खेल दिखाया।....पहले हम लोगों की क्या बात हुई थी?'

पार्थो की इच्छा हो रही थी, घर जाकर नहाए-धोए फिर भी पार्थो उनके साथ खड़ा था। उसकी सोचने की इच्छा हो रही है कि उनके साथ वह भी, दोपहर भर हो-हल्ला कर मेट्रो में सिनेमा देख आया है। जैसे यही पवित्र है, यही सुन्दर है। ऑफिस की फाइलें अपवित्र, असुन्दर हैं। अच्छा! पार्थो को ऐसा क्यों लग रहा है?

कहाँ? ऑफिस में काम करते वक्त तो ऐसा महसूस नहीं होता है? बल्कि बड़े उत्साह के साथ ही करता है।

पार्थो इस वक्त ऑफिस से घृणा कर रहा है।

पार्थो 'बिचारा' सा मुँह बना कर पूछ रहा था—'क्या बात हुई थी?'

'वाह वाह! प्रामिस ही बिल्कुल भुला बैठा है तू? यह बात नहीं हुई थी कि दल में जिसकी पहले नौकरी लगेगी, वह बाकी लोगों के सिनेमा, सिगरेट, रेस्त्रां

आदि का व्ययभार ग्रहण करेगा ?'

अतिन जल्दी से बोला—'अहा, ऐसी बातें क्यों कह रहा है ? नौकरी होते ही तो उसने हम लोगो को खिलाया था, सिनेमा दिखाया था। हर एक को दो-दो पैकेट सिगरेट उपहार-स्वरूप दिये थे।'

'तब तो राजा बना दिया है।' टूटू ने एक उपेक्षा की भंगिमा बनाते हुए कहा—'हर महीने कुछ छोड़ न बेटा।'

'एई टूटू, क्या फालतू बातें बक रहा है ? घर में उसके जरूरत नहीं है ?'

टूटू हा हा कर हँसता रहा—'बेटा, हमारी जरूरतें भी कुछ कम नहीं हैं। बाप की जेब काटते-काटते जीवन से घृणा हो गई है।'

पार्थो को लगा बहुत ही ज्यादा शर्म आई।

पार्थो को लगा उसने ठीक काम नहीं किया है। इधर इस वक्त जेब में जो कुछ है, वह देने पर निहायत भीख देने के समान लगेगा। इसके अलवा पार्थो को लगा, अतिन उसे पराया समझ रहा है। अंतरंगता की वह पुरानी स्वर-लहरी तो अतिन के कण्ठ-स्वर में नहीं सुनाई पड़ी। जैसे टूटू, शुभेन्दु, अतिन एक दल के हों और पार्थो दूसरे दल का।

पार्थो की जेब में ज्यादा कुछ न था, क्योंकि पार्थो तन्ख्वाह लाकर माँ के हाथों में देता है। माँ फिर उसमें से जितना स्वेच्छा से या सद्‌विवेचना से उठा कर दे देती है—वही पार्थो के लिए महीने भर का सहारा है। फिर भी पार्थो बोला—'चलो, फिर आज ही पुराने पाप का प्रायश्चित्त किया जाये। बोलो कहाँ खाओगे ?'

'आ....हा....हा।'

टूटू और शुभेन्दु एक उल्लास-ध्वनि निकाल बैठे—'चलो, मनुष्यत्व नाम की चीज अभी भी कुछ अवशिष्ट है। लेकिन कहाँ के मतलब ? हम लोगों के उसी आदि और अकृत्रिम 'सुरभि केबिन' में क्यों नहीं ? या उसमें जाने पर तुम्हारी मानहानि होगी ?'

'पियक्कड़ों की तरह बेकार की बातें क्यों कर रहा है ?' कह कर पार्थो उन्हें धकेलता ले चला।

उधर पार्थो के शरीर के समस्त लोमकूप स्नान-पिपासा के लिए आर्तनाद कर रहे थे।

लेकिन यह कह कर पार्थो दलच्युत तो नहीं हो सकता है ?

'सुरभि केबिन का सन्तु सरकार बोला—'पार्थोदा तो हम लोगों को भूल ही गए हैं।'

'अचानक भूल जाने का अभियोग क्यों ?' पार्थो बोला। लेकिन अचानक ही उसे लगा कि किसी हालत में पहले की तरह वह तीखे-तीखे उत्तर नहीं दे पा रहा है।

पार्थो को बहुत बुरा लगा।

'ए शुभेन्दु, बिजन, अनुतोष और शिशिर ने आज बड़ा मिस किया !'

टूटू बोल उठा—'कौन जानता था भइया, आज पार्थोबाबू कल्पतरु बन जाएँगे।'

'ये लोग कहाँ हैं ? बिजन, अनुतोष और शिशिर ?' पार्थो ने पूछा।

'वे भी हमारे साथ ही थे। वहीं से चले गए।'

'कहाँ गए ?'

'शिशिर की बहन की शादी है। डेकोरेटर और केटरर से मिलने जा रहा था शिशिर—बोला कि मेरे साथ चलो।'

'शिशिर के बहन की शादी है ? अभी उस दिन एक की हुई है न ?'

'इससे क्या होता है ? उसकी बहनों की संख्या तो अनगिनत है।'

'गॉड ही जानते हैं, ये आदमी कैसे हिम्मत करते हैं !' शुभेन्दु बोला—'जब कि हालत कुछ ऐसी....'

अतिन हँसा—'हालत अच्छी नहीं है तभी तो साहस है। हालत अच्छी होती तो शायद सोचता—'बाप रे, रेलगाड़ी चलाता जाऊँगा तो मेरी ही दशा बिगड़ जाएगी, मेरी दुर्गति होगी।' इन्हें इसका डर नहीं। जानते हैं, जहाँ बावन तहाँ छप्पन। फिर मिलने वाला सुख क्यों छोड़ा जाए ?'

'ए अतिन, बहुत बढ़-बढ़ कर बोल रहे हो। यह प्रसंग बन्द करो। बोलो क्या खाओगे ?'

'क्या खाएँ ?'

टूटू महानुत्साह से बोला—'सन्तु, आज तुम्हारी रसोई में कौन-कौन सा आइटम है ? जो कुछ है सब ले आओ। आज पार्थोबाबू खिला रहे हैं। आँख बन्द करके सप्लाई करना। ओफ्, भूख के मारे पेट में कुत्ता बोल रहा है।'

खाने का पर्व चलता रहा और सन्तु बेपरवाह ढंग से एक के बाद एक आइटम ला-लाकर परोसता रहा।

पार्थो भी उसे उत्साहित करता रहा।

सन्तु की भोज्य-तालिका के अभिनवत्व के लिए वाहवाही देता, लेकिन अचानक पार्थो को लगता, यह सन्तु उसके पूर्वजन्म का शत्रु है।

और ये लोग ?

शायद पूर्वजन्म के उधारदाता।

मरने के लिए ही आज उस बस पर पार्थो चढ़ा था और मरने के लिए ही उनके साथ उतरा था।

पार्थो ने क्या स्वर्ग का टिकट खरीदा है ?

कितने रुपए का ?

चालिस से क्या कम होगा ।

किस तरह से गबर-गबर निगल रहे हैं शैतान लोग ! शत्रुता—सिर्फ शत्रुता ! नही तो कोई एक साथ इतना खा सकता है ?

फिर भी पार्थो मुंह से कहता जा रहा है—'क्यों सन्तु सरकार, और कुछ नही है ? ए हे—फिर तो हार मान गए ।....एई टूटू, और दो फिशफ्राई ले न ? यह तो तेरा फेवरेट है ।'

पार्थो के अन्दर का 'उल्टा सीधा' पार्थो से करवाता कुछ है, कहलाता कुछ है । इसीलिए अचानक जैसे ही खाना खत्म होते-होते अतिन बोल उठा—'तू आजकल सोमा के घर नहीं जाता है ?' तब पार्थो जैसे आसमान से गिरा—'सोमा के घर ? कौन सोमा ? दिवेन्दु की भानजी ?'

इधर ठीक तभी, अचानक ही बात याद आते ही पार्थो का मन उचाट हो रहा था ।

पार्थो को याद आ रहा था, पहले महीने की तनख्वाह पाकर जिन्हें खाना खिलाया था उनमें सोमा भी थी । कहीं मामा के साथ घूमने गई थी, लौटते समय उन लोगों को भी रोक लिया गया था ।

उस दिन खाते-खाते सोमा बार-बार पार्थो की तरफ देख रही थी और आँखें मिल जाने पर हँस कर बोली थी—'भगवान् करे, एक तरफ से आप सब को अच्छी-अच्छी नौकरी मिल जाए—हम लोग रोज-रोज दावत खाएँ ।'

सोमा उनके दोस्त की भान्जी है, तब भी 'आप' कहते थे वे लोग । टूटू बोला था—'सड़ी-गली इस एक नौकरी के अलावा आप हम लोगों के लिए कुछ और न सोच सकी ? छि: !'

सोमा शर्माई नही । सोमा ने हँसते हुए कहा था—'इसके अलावा आप लोगों में दूसरी कोई क्षमता न होने के कारण—यही आपके भाग्य मे है ।'

'क्षमता नही है, यह आप कब जान गईं ?'

'बहुत दिनों से—' सोमा ने सीधी तेज आवाज में कहा था—'दूसरी कोई क्षमता होती तो इस तरह चबूतरों पर अड्डा जमाते घूमते ? विद्या या क्षमता की तो कमी नही ?'

दिवेन्दु ने कहा था—'बड़ी लम्बी-लम्बी बातें कर रही है । सोच रही है 'मातुल के बल पर बलवान हूं मैं' अतएव सभी के आगे मामा के घर के नखरे चलेंगे ?'

सोमा ने हँस कर कहा था—'यही सोच रही हूँ ।'

'तो फिर सबको मामा पुकारते हुए भक्तिपूर्वक प्रणाम कर ।'

'खा लूं तो करूँ ।'

कहा था और करने भी आई थी वह लड़की । गले में आँचल डाल कर हाथ

जोड़े इन लोगों की तरफ बढ़ी थी।

अतिन बोला था—'दिवेन्दु तेरी भांजी तो बड़ी खतरनाक है।'

और पार्थो ने कहा था—'तुम दिनों-दिन बड़ी वाचाल हुई जा रही हो।'

पार्थो ने ही सिर्फ 'तुम' कह कर बात की थी। इसके मतलब पार्थो के साथ उसका पहले से परिचय था।

लेकिन उसके बाद?

पार्थो ने क्या उस परिचय को मिटा देना चाहा था? इसीलिए क्या दूसरे किसी को याद दिलाना पड़ा—'तू आजकल सोमा के घर नहीं जाता है?'

पार्थो को तभी सोमा की याद आई थी। फिर भी बोला—'कौन सोमा? दिवेन्दु की भांजी?'

'ले भइया! बिल्कुल ही कौन सोमा?' अतिन ने गम्भीर आवाज में कहा—'तो फिर काकू की लड़की के साथ काफी दूर बढ़े हो?'

यूँ ही मन ही मन पार्थो को बहुत बुरा लग रहा था। पार्थो सोच रहा था—आज ही मरने को मैं इन्हीं की बस पर क्यों चढ़ बैठा। अलग आया होता तो इस दांव-पेंच में न फँस जाता। इसीलिए पार्थो उस काकू की लड़की शब्द को सुनते ही बिगड़ गया। बोला—'किसी के साथ मेरा कुछ बढ़ा नहीं है। सोमा के लिए ही कब मैं मर रहा था?'

'तुम उसके लिए न मरो, वह तुम्हारे लिए मर रही है बेटा!'

'इसके लिए मैं तो जिम्मेदार नहीं।'

'बेटा, बिल्कुल ही जिम्मेदार नहीं हूँ कहने से कैसे होगा? किसी के लिए न मर कर सिर्फ तुम पर ही वह क्यों मर रही है?'

पार्थो ने ऊँची आवाज में कहा—'मेरा चेहरा अच्छा है, स्वास्थ्य अच्छा है, यूनिवर्सिटी का रेजल्ट अच्छा है और व्यवहार अच्छा है। अतएव मेरे लिए मर जाना किसी भी लड़की के लिए स्वाभाविक है। इसके मतलब मैं तो....'

'चुप रह स्टूपिड! तूने जरूर उसे प्रश्रय दिया होगा, आशा दी होगी, सुहाग दिखाया होगा, वरना....'

पार्थो विरस हुआ।

पार्थो वैसा ही निरासक्त मुँह बना कर बोला—'किसी के घर घूमने जाने पर उनकी लड़की के हाथों की चाय पीने से, या दो बातें करने से अगर उसे प्रश्रय देना होता है, आशा देना होता है, सुहाग जताना होता है, तो फिर बंगाल की कम से कम सौ लड़कियाँ मुझ पर दावा कर सकती हैं।'

'तो फिर सोमा इन सौ लड़कियों में से एक है?'

'और नहीं तो क्या?'

'तो फिर एक बात पूछूँ दादा! इतने घर हैं तुम्हें तो और किसी के

घर घूमने जाते नहीं देखा ? अचानक सोमा के घर ही क्यों रह-रह कर घूमने जाने की इच्छा होती थी ?'

'कैफियत माँगोगे तो जरूर न दूँगा, लेकिन घटना क्या थी बता सकता हूँ—' पार्थो ने पूरा एक गिलास पानी एक साँस में पीकर मेज पर ठक् से रख कर कहा—'दिवेन्दु के जीजा जी के मरने के बाद दिवेन्दु को कुछ दिनों तक अपनी दीदी के घर पर रहना पड़ा था और तब बुखार आने पर मुझे बुलाया था.... इसीलिए भद्रता-वश....'

'भद्रता....ओ बा....बा !'

टूटू हा हा करके हँस उठा—'हम लोग कब से भद्र बन गए रे ? उस पर भद्रता....'

पार्थो ने कोई उत्तर नहीं दिया। सिर्फ जलती आँखों से दूसरी तरफ देखता रहा।

और आश्चर्य की बात, उसी वक्त पार्थो के मन में आया कि वास्तव में बड़ा अन्याय हो गया है। बहुत दिनों से सोमा के घर जाना नहीं हुआ है। दुर....न जाने मैं क्या हुआ जा रहा हूँ ! मेरे छुट्टी के दिन कहाँ जा रहे हैं ?'

बिल लेकर सन्तु सरकार आकर खड़ा हुआ। उस तरफ एक नजर देख कर शुभेन्दु बोला—'पार्थो की जेब पर अच्छा धावा बोला गया—बेहद गुस्सा है पार्थो।'

बिल के अंकों को देख कर पार्थो का मिजाज बिगड़ गया था, लेकिन 'बेहद गुस्सा है' सुन कर बेहद गुस्सा हुआ। बोला—'जा जा, सबको अपने जैसा मत समझ।'

'मेरी तरह ? मेरी जेब तो खेल का मैदान है बाबा ! कब किसके लिए कुछ कर सका हूँ ? उसी दुःख से तो मर रहा हूँ।'

'इतनी आसानी से मरेगा तो मरते-मरते जिन्दगी बीत जाएगी—' पार्थो सन्तु की तरफ देख कर जरा नीची आवाज में बोला—'ए, तुम एक बार मेरे घर आ जाना, समझे ?'

सन्तु समझता है—गर्दन हिलाई।

वे सब उठे।

अतिन पैन्ट की कमर खींच कर ठीक करते हुए बोला—'न, बहुत ज्यादा खवाई हो गई।'

टूटू ने पूछा—'विवेक कोंच रहा है क्या ?'

'नहीं—ठीक विवेक नहीं, माने....'

'अच्छा, माने बाद में सोचने से काम चलेगा,' कह कर पार्थो सुरभि केबिन से निकल आया। और वे भी।

× × ×

अभी सोमा के यहाँ जाने पर क्या होगा ?

रास्ते पर निकल कर पार्थो ने सोचा।

कुछ देर पहले नहाने के लिए शरीर में जो भयानक प्यास महसूस हुई थी, वह जाने कब गायब हो गई थी। शायद देर तक पंखे के नीचे बैठने की वजह से, या दो गिलास पानी पीकर और खाने-पीने से। अभी कुछ देर नहाए बगैर चल सकता है। फिर अब घर लौटने की क्या जरूरत है ?

अविन, शुभेन्दु, टूटू पान की दुकान के सामने रुक गए। पार्थो झट एक चलती बस पर चढ़ गया।

नौकरी में घुसने के बाद से जो घड़ी के काँटे के साथ मिला कर घर लौट रहा था, आज अचानक इतनी देर होती देख कर घर पर लोग चिंता करेंगे, पार्थो को इसका ख्याल न आया। इतने दिनों से न आने की सोमा को क्या कैफियत देगा, यही सोचता हुआ चला।

× × ×

दरवाजा सोमा ने ही खोला।

सोमा ही खोलेगी यह पार्थो जानता था। बाहर आकर दरवाजा खोल दे, अब उनके घर में ऐसा कौन है ? रात दिन काम करने वाला भी कोई आदमी नहीं है। सोमा के पिता की मृत्यु के बाद से सोमा की माँ आसानी से बाहरी आदमी के सामने निकलना नहीं चाहती है। बाकी बची सोमा की दादी। उनकी बात छोड़ ही देनी चाहिए। शोक और उम्र से जीर्ण महिला, भीतर के एक कमरे के कोने में पड़ी-पड़ी परमायु के ऋण का भुगतान कर रही हैं। पृथ्वी की तरफ पीठ फेर ली है।

पार्थो के अन्दर आने के लिए, चुपचाप सोमा दरवाजा खोल कर हट गई। सोमा के चेहरे पर कोई विशेष भाव नहीं दिखाई दिए—न अभिमान का, न अभियोग का। यही बातें सोचता हुआ पार्थो आ रहा था और इसके लिए प्रस्तुत होने की कोशिश भी कर रहा था।

पार्थो भी चुपचाप घुस आया। उसने सोमा के चेहरे की तरफ देखने की कोशिश की, लेकिन सोमा तब दरवाजा बन्द करने में व्यस्त थी।

और आगे बढ़ कर पार्थो बैठने के कमरे में जा पहुँचा।

सोमा के घर में आधुनिक साज-सज्जा रहने की बात नहीं है। अलग एक जो कमरा है, वह भी इसलिए, क्योंकि सोमा के दादा जी कभी यह एकमंजिला मकान बना गए थे और सोमा लोगों की गृहस्थी में सदस्य संख्या कम होने के कारण। तीन महिलाओं के अलावा तो चौथा इस घर में कोई है नहीं। इन तीनों ने इस दुनिया में तीन पीढ़ियों को बाँध कर रख दिया है।

पहली बार आकर पार्थो ने कहा था—'बढ़िया—ऐसा कॅम्बोनेशन दुर्लभ है। दिव्य, तू भी तो नही रहेगा।'

दिवेन्दु ने कहा था—'नही, मैं हमेशा कैसे रह सकता हूँ ?'

'अतएव सिर्फ प्रमिलाओं का राज्य ? या भूत भविष्य वर्तमान तीनों के प्रतीक स्वरूप....।'

सोमा बोली थी—'यहाँ वर्तमान ही कौन है और भविष्य ही कौन है ? सब भूत है।'

'अपने को अतीत के कुण्ड में रखना चाहती है ?'

हाँ, उन दिनों पार्थो सोमा को 'आप' कहता था।

सोमा बोली थी—'जिनका कोई भविष्य नही वे भूत है।' पार्थो अचानक उसकी आँखों में आँखें डाल कर बोला था—'आपकी वह चीज नहीं है, किसी ने कहा है ?'

'बुद्धि नाम की एक चीज भीतर है, उसी ने कहा है।' सोमा को तभी पितृ-वियोग हुआ था। उसके चाचा, ताऊ, भाई कोई नहीं है, अतएव पाँव के नीचे जमीन भी न थी। उसका यह सोचना स्वाभाविक ही था कि उसका 'भविष्य' है नही। लेकिन उस वक्त पार्थो नौकरी नहीं करता था, फिर भी पार्थो ने जाने किस साहस के बल पर कहा था, 'और मैं अगर कहूँ, इतना हताश होने की जरूरत नही है। भविष्य है तुम्हारा।'

और उसके बाद से जाने कब सोमा 'तुम' हो गई।

उस वक्त दिवेन्दु था।

लेकिन दिवेन्दु बराबर दीदी के यहाँ कैसे रह सकता है ? दीदी भी नहीं चाहती हैं। कहा है—'नही, नही, तुझे हमारी इस अंधकारमय गृहस्थी में उलझे रहने की जरूरत नहीं है। हमारे यहाँ खाना ही क्या बनता है ? तेरा स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा। तू घर चला जा।'

तब दिवेन्दु ने कहा था—'पार्थो, मै तो आता ही रहूँगा, तू भी बीच-बीच में आकर हाल-चाल ले जाया करना।'

सो दोस्त का अनुरोध पार्थो ने टाला नही था। तब से बहुत 'देखने' और बहुत 'सुनने' की भूमिका निभाई है। लेकिन आश्चर्य की बात है, अचानक ही सोमा लोगों के उस मनोहर पोखरे के छोटे एकमंजिले मकान की बात ही पार्थो भूल बैठा था। आज आकर ताज्जुब लग रहा था। और कुछ नही—वही कार।

हिंसक भाव से सोचा पार्थो ने, उस गाड़ी पर चढ़ा कर घर की दीवारों के बीच डाल देने की वजह से मेरी यह दशा हुई है। दुबारा नए सिरे से निकल कर यहाँ-वहाँ जाने का उत्साह ही नहीं रहता है। संजय घोष के मतलब का शिकार अब मै नही होने का।

कमरे के दृश्य का वर्णन करने पर—पहले ही जिसके बारे में कहा जा सकता है, वह है एक बड़ा सा तख्त। उस पर पुरानी होते हुए भी एक साफ दरी बिछी थी। और है एक काला पड़ गया बुकशेल्फ, एक छोटी तीन पाए वाली मेज और दो हत्थेदार कुर्सियाँ। सभी कुछ सोमा के दादाजी के वक्त की चीजें हैं, इसमें कोई संदेह न था।

लेकिन सोमा के पिताजी के समय की क्या कोई चीज नहीं है? न, नहीं थी—यही कहना पड़ेगा। सोमा के पिता सारा यौवन काल बिस्तर पर बीमार पड़े रहे और अन्त में मर गए। पार्थो ने उन्हें देखा न था। सोमा के ही मुँह से उसके पिता के दु:खदायी जीवन की बातें सुनी थी। पिता के लिए सोमा के प्यार की गहराई देख कर आश्चर्यचकित हुआ था पार्थो। पार्थो के भी तो पिता है और उन पिता में कभी-कभी एक आध बुढ़ापे की बातों के अलावा, कोई दोष तो दिखाई नहीं पड़ता है। उन्हें एक दिन के लिए भी बिस्तर पर पड़े रहते नहीं देखा। अभी भी गृहस्थी के लिए उपार्जन करने से शुरू कर जूता सिलाई और चंडीपाठ, आज तक करते चले जा रहे हैं। लेकिन कहाँ, पार्थो इस तरह से तो अपने पिता को नहीं चाहता है? 'इस तरह' छोड़ किसी तरह का प्यार है भी, इसमें सन्देह है। बल्कि कुछ अवज्ञा करने के भाव हैं, जरा घृणा, कुछ विरक्त, चिढ़ा सा भाव। उसके साथ बुला कर कभी पिताजी बात भी करते तो उन्हें 'डाउन' कर सकने में मजा आता।...हाँ, पिता जी ही बुला-बुला कर बात करते.... पार्थो कदापि नहीं।

फिर भी सोमा नाम की लड़की का पिता के लिए गहरा प्यार, दिल को छू गया था।

पार्थो की इच्छा हुई—उसके, उस गहराई की गहन शून्यता को अपने अच्छे व्यवहार से भर दे।

उस अच्छे व्यवहार का नमूना दिखाने के लिए ही तब पार्थो बार-बार सोमा के पास गया है। सोमा को 'भविष्य' के बारे में सहसा एक आशा की वाणी भी सुना रखी है।

और कुछ देर पहले वही पार्थो पूछ बैठा—'कौन सोमा?'

अब फिर पार्थो, सोमा के अपरिवर्तित चेहरे वाले बैठक में आकर बैठते ही सोचने लगा—इतने दिन बिना आए था कैसे?

पार्थो पाँव लटका कर तखत पर बैठा। सोमा दरवाजा बन्द करके बुकशेल्फ से टिक कर खड़ी हुई। तिरछी खड़ी होने की वजह से, सोमा के गाल का एक हिस्सा दिखाई पड़ रहा था। सोमा के इस गाल पर कुछ नीली सूक्ष्म रेखाएँ स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी।

सोमा गोरी नहीं है फिर भी यह शिराएँ दिखाई पड़ रही थी। पार्थो ने सोमा

से आँख मिलाने की कोशिश की लेकिन मिला न सका। दिवाल की उस तस्वीर में न जाने सोमा क्या देख रही थी। मानो नया कोई आविष्कार किया हो। लेकिन वह सोमा के पिता की तस्वीर तो थी नहीं जो सोमा उसमें करुण-सा कुछ ढूँढ पाई हो। असल में वह तस्वीर ही न थी। कार्पेट पर बनायी चार लाइन की कविता थी। वह भी धुंधली पड़ गई है।

कितने दिनों पहले पार्थो ने पाठोद्धार करने की कोशिश की थी। क्यों किया था ? उसका कोई कारण न था। शायद वह सोमा की दादी के हाथों की कढ़ाई थी, इसलिए कौतूहल हुआ था। दादी के साथ 'कार्पेट की कढाई' शब्द ने उसे अच्छे खासे कौतूहल से आक्रान्त कर दिया था। और सोच कर अवाक् रह गया था कि आज की यह जड़पिण्ड सी महिला कभी युवती थी और कार्पेट पर रेशम काढा था—

"देवता को देते हैं फूल चंदन
धूप दीप उपचार,
तुम्हारे चरणों में, हे नाथ
रखती हूँ यह तुच्छ उपहार।"

पार्थो उस धुंधले कांच के बीच से पाठोद्धार करके हँस उठा था, 'देवता से जब अलग किया गया है तब सोचा जा सकता है ये 'नाथ' तुम्हारे तब के दादाजी होंगे।'

सोमा भी हँसी थी—'इसके अलावा और क्या होगा ? सुना है उसके साथ मखमल पर रेशम के धागो से फूल काढ़ कर दो जूते भी बनाए थे महिला ने, और इसी मढाई हुई कविता के ऊपर दोनों जूते स्थापित कर, उपहार स्वरूप दिया था।'

'अरे बाप रे ! भद्र महिला तो बड़ी साहसी थी ? उस जमाने मे इस तरह खुल्लम-खुल्ला प्रेम निवेदन ?'

'आप उस जमाने को जैसा समझते हैं वैसा नही था। उस वक्त बहुत कुछ था—' सोमा और हँसी—'दादी के छोटे से बक्स मे अभी भी दो एक नमूने है।'

'छोटे बक्स में दुस्साहस ?'

पार्थो ने माथे पर आँखें चढा ली थी।

'आ....हा, दुस्साहस को क्या बात थी ? उसका नमूना था। दादीजी द्वारा उपहार दिये गये चिट्ठी के पैड के दो पृष्ठ और दो एक लिफाफे—यही दादीजी के शादी में मिले छोटे बक्स में रखे हैं। उस कागज की महिमा कितनी है ? हल्के हरे रंग की आभायुक्त जमीन पर छोटी सफेद बूटियाँ, और बाँई तरफ ऊपर कोने में एक नाव की तस्वीर। ...बाकी बातें आप समझिए।'

बाकी बातें समझ कर दोनों बड़ी देर तक हँसे थे उस दिन। और सोमा ने

कहा था—'जो भी कहिए पार्थोदा, उस समय लेकिन लोगों में सब बातों पर काफी निष्ठा थी। आज की तरह वे लोग धोखेबाज नहीं थे।'

'आजकल के हम लोग सब धोखेबाज हैं?'

सोमा ने कहा था—'इसका उत्तर मैं फिर किसी दिन दूंगी।'

'तुमने क्या हर बात का हर जवाब जान लिया है?'

'इतनी स्पर्धा नहीं करती हूँ। फिर भी हर किसी की अपनी एक धारणा सी होती ही है।'

हालांकि पार्थो को उस दिन की बात याद नहीं। इसीलिए पार्थो कह न सका—'तुम क्या उस दिन के उस प्रश्न का उत्तर ढूंढ रही हो?'

× × ×

पार्थो ने दूसरी बात कही।

बोला—'अचानक उस कार्पेट के उस फूल में क्या मिल रहा है?'

सोमा अभिमानवश टुकड़े-टुकड़े नहीं हुई। सोमा ने कोई तिरछी बात भी नहीं कही। सोमा ने सिर्फ कहा—'मिलेगा क्या? फ्रेम की रस्सी 'टूटेगी-टूटेगी' सी हो रही है, इसीलिए सोच रही हूँ, टूट कर गिरने से पहले खुद ही उतार कर रखना अच्छा रहेगा।'

फिर पार्थो ने एक बार आँखें मिलाने की कोशिश की, और फिर एक बार व्यर्थ हुआ। अतएव इसी गर्दन घुमाए मुंह की तरफ देख कर कहा—'सम्प्रति तुम्हारा यही जीवन दर्शन है क्या?'

अचानक इस बार सोमा ने मुंह घुमा कर देखा। पार्थो की आँखों में सीधी और स्पष्ट दृष्टि डाली। बात नहीं की।

इस दृष्टि से पार्थो को उलझन सी हुई। और अभी कुछ देर पहले तक, अपनी इतने दिनों की अनुपस्थिति के लिए, त्रुटि समझ कर अपने को अपराधी समझ रहा था—झट मन का भाव उसका बदल गया। पार्थो को विरक्ति सी हुई। उसे लगा, इस तरह से अन्तर्भेदी दृष्टि से देखने की क्या बात हो गई? जैसे मैंने तुमसे वादा किया था और उस वादे को न निभाया हो। नहीं नहीं, मैं इस तरह के दांवपेंच में नहीं फँसने वाला। क्यों बाबा, पार्थो मुखर्जी पर तुम्हारा कौन सा दावा है? तुम्हारे बाप मर गए थे और तुम्हारे मामा ने मेरे साथ दोस्ती का सूत्र पकड़ कर तुम लोगों की देखभाल करने को कहा था—यही न? सो, उस वक्त जितना मैं कर सकता था, मैंने किया था। अपने घर का कोई काम मैं कभी नहीं करता था, लेकिन तुम लोगों का काम कर दिया है। तुम्हारी माँ को कॉलिक पेन होने पर डाक्टर बुला लाया हूँ, तुम्हारी बिजली की लाइन खराब होने पर मिस्त्री बुला कर लाया हूँ। और भी कितना कुछ किया है, लेकिन इसकी वजह से तुम्हारे साथ प्रेम करने नहीं बैठ गया हूँ। अच्छा व्यवहार, या अच्छी

तरह से बात करने को तुम 'प्रेम' समझ कर नाचती फिरो, तो मैं इसका जिम्मेदार नहीं।

अब मैं काम-काज कर रहा हूं—गप्पें हांक कर घूमने का समय ही कहां है? अनायास ही चला आया हूं आज। तुम अगर इस तरह से मेरी तरफ देखोगी—फिर नहीं आऊंगा।

लेकिन इस तरह की एक दृष्टि, जिसको किताबी भाषा में 'स्थिर निर्वाक् दृष्टि' कहते हैं, के सामने बैठे रहना भी तो अस्वस्तिकर है? इसीलिए पार्थो को बोलना पड़ा।

पार्थो बोल उठा—'क्यों 'तुमने पूछा नहीं कि मैं इतने दिनों से आया क्यों नहीं?'

कहने के बाद ही इच्छा हुई, अपने गाल पर अपने आप चांटे मारे। ताज्जुब है, उसने सोमा को यह प्रश्न जुटा दिया? इधर ठीक इसी प्रश्न के विपरीत ही, मन ही मन अपने को सहत करने की कोशिश कर रहा था। सोचता आया था कि जब सोमा कहेगी—'इतने दिनों से आए क्यों नहीं थे?' तब पार्थो जवाब देगा—'क्या मुसीबत है, तुम्हारे साथ क्या नियमित हाजिरी लगाने का अनुबन्ध हुआ था?'

लेकिन देखते ही सोमा ने यह प्रश्न नहीं पूछा था। हो सकता है मान-अभिमान की वही आदि अकृत्रिम नारी सुलभ नीति के कारण समय ले रही हो। इस मौके पर पार्थो ही हो-हल्ला करके दूसरी बातें शुरू कर परिस्थिति बदल सकता था। कम से कम 'मां कैसी है? दादी जी कैसी हैं?' इत्यादि कुशल क्षेम के प्रश्नों के बहाव में ठहरी हुई सी आबोहवा को, दूसरी तरफ बहा ले जा सकता था—इसकी जगह मूर्खों की तरह स्वयं ही नाव सोमा की तरफ धकेल कर बढ़ा दी। अब सोमा उसी नाव पर चढ़ कर नदी पार कर ले।

आश्चर्य है, पार्थो ऐसी बेवकूफी क्यों करने गया?

लेकिन सोमा ने क्या पार्थो की बेवकूफी का अवसर लिया? कहां?

सोमा उस प्रश्न का छोर पकड़ कर कुछ न बोली। अपनी स्थिर दृष्टि को लौटाते हुए बोली—'क्या बहुत दिनों से नहीं आए हैं? ऐसा तो नहीं लग रहा है।'

इसके मतलब पार्थो का आना न आना सोमा के लिए कोई अर्थ नहीं रखता है। सोमा को लगा ही नहीं था कि पार्थो बहुत दिनों से नहीं आया है।

पार्थो आहत हुआ।

पार्थो अपमानित हुआ।

इसीलिए पार्थो कह उठा—'लग नहीं रहा है? तब तो कोई बात ही इधर मैं अपराध-भाव के बोध से....' पार्थो बात खत्म न कर सका।

पार्थो ने अपने मन के गाल पर तड़ से एक चाँटा मार ही दिया।

छिः छिः ! आज का दिन क्या सिर्फ उसके पराजय का दिन है ? वह शाम से ऐसी बेवकूफियाँ क्यों करता जा रहा है ? तब, जब, संजय घोष को गाड़ी मिली थी, लग रहा था उसके बदले में, हाथ की मुट्ठी में बड़ा भारी ऐश्वर्य आ गया है।

दुर !

सिर्फ बुद्धूपना।

कहीं अच्छा था यथासमय कार पर चढ़ कर घर लौट आना। फिर उतने सारे राक्षसों को भरपेट खिला कर जान न देनी पड़ती और इतना रास्ता पार करके श्रीमती सोमा देवी का मानभंग करने के लिए भी न बैठना पड़ता। जबकि मानभंग क्या है, घोड़े का अण्डा ! निहायत हो भद्रतावश दो एक बातें करना।

लेकिन सोमा ने भी जैसे आज भद्रता की पराकाष्ठा का व्रत लिया है। इसीलिए सोमा कहती है—'छिः यह क्या कह रहे हैं ? अपराध कैसा ? तब बेकार थे, हाथों में बहुत वक्त था—दोस्त की दीदी के घर घूमते-घामते आ सकते थे। अब आपके पास कितना काम है।'

सोमा की इस बात पर पार्थो और भी ज्यादा उत्तेजित हुआ।

सोमा ने जान-बूझ कर पार्थो को 'बेकार' अवस्था की याद दिलाई है।

इसके मतलब सोमा को ईर्ष्या हो रही है।

होगी ही तो।

संसार में कोई किसी की अच्छाई नहीं देख सकता है। इधर आवाज कितनी नरम है।

पार्थो कठोर हुआ।

पार्थो हिल-डुल कर बैठा।

पार्थो ने सोचा मैं भी भद्रता की पराकाष्ठा दिखाता हूँ।

इसीलिए पार्थो बोला—'बेकार रहने और बेकार न रहने के बीच असल में जरा-सा ही तो व्यवधान है। इसके लिए पूरा आदमी ही बदल जाऊँगा—यह तो नहीं होता है।'

'कहाँ—बदले कहाँ है ?'

सोमा ने और भी नरम आवाज में कहा।

इधर नरम बातें सुन कर ही सिर से पाँव तक पार्थो के आग लगी जा रही है। इच्छा हो रही थी, आबोहवा और गरम हो जाए, बातों से बातें घिसने से और जरा आग जले, सोमा गुस्सा दिखाए, अभिमान करे, रोए। पार्थो में उसके जवाब में गुस्सा दिखा कर चैन पाए।

पार्थो जोर-जोर से कैफियत माँगे कि लोगों को यह कहने का स्कोप कैसे

मिला कि सोमा राय नाम की लड़की पार्थो मुखर्जी पर मर रही है। पार्थो यह भी कह डालना चाहता है कि इस तरह की असंगत बातें पार्थो को पसन्द नहीं।

यह सब न करके सोमा उस तरफ से फटकी नहीं।

सोमा कहती क्या है—'कहाँ, बदले कहाँ है ?'

'तुम बदल गए हो' जैसे अभियोग के उत्तर में अपनी तरफ से बहुत कुछ कहा जा सकता है लेकिन 'कहाँ, बदले कहाँ है' कहने से तो वक्तव्य का मुँह सिलना हो गया।

लेकिन आज तो पार्थो को बहुत बातें कहनी थीं।

अनेकों कैफियतें, बहुत सा दोष स्वीकार।

इसीलिए पार्थो को लगा कि सोमा सिर्फ उसका अपमान ही नहीं कर रही है उसने पार्थो को ठगा भी है।

पार्थो को जलन सी हुई।

इस जलन के फलस्वरूप पार्थो उठ कर चला जा सकता था और वैसा करना पार्थो की सम्मान-रक्षा के लिए सहायक होता। लेकिन पार्थो ने वह आसान रास्ता नहीं पकड़ा। अचानक पार्थो ने सोमा के दोनों कन्धे पकड़ कर हिलाते हुए कहा—'इस बीच क्या हो गया है सुनूँ तो ? कोई जबरदस्त प्रेमी जुटा लिया है क्या ? इसी अहंकार से जमीन पर पाँव नहीं पड़ रहा है।'

इस आक्रमण से सोमा न अवाक् हुई न विचलित ही। यहाँ तक कि हिल-डुल कर अपने को छुड़ाया तक नहीं। सोमा ने सिर्फ उसी तरह अन्तर्भेदी दृष्टि डाली और स्थिर खड़ी रही। पार्थो ने उसके कन्धे छोड़ दिए। फिर बैठ गया। बोला—'लोगों के मुँह से खबर रट रही है उधर कि सोमा राय पार्थो मुखर्जी के लिए मरी जा रही है।'

इस बार सोमा के चेहरे पर हँसी की झलक दिखाई दी।

सोमा बोली—'आप क्या समझ रहे हैं कि विज्ञापन मैंने लिख दिया है ?'

पार्थो अचानक सिमट गया।

वह बोला—'तो फिर ये बातें उठती क्यों है ?'

इस बार सोमा जोर से हँसी। बोली—'उठने दीजिए न! इस अपवाद से आपकी मानहानि होगी ?'

पार्थो सारी तेजी खो बैठा।

पार्थो बेवकूफ बन गया।

पार्थो गिजगिजा कर बोला—'यह बात नहीं हो रही है। लेकिन उठेगी ही क्यों ?'

'इससे आपका क्या नुकसान है ?...कहते हैं न कि 'मैं आपके लिए मर रही हूँ', यह तो कोई नहीं कह रहा है कि 'आप मेरे लिए।'

पार्थो को लगा अचानक सोमा उससे बहुत ऊपर उठ गई है। उसे पार्थो पर व्यंग करने का अधिकार हो गया है। उस ऊँचाई से शायद अब उसे उतारा न जा सकेगा।

हालांकि पार्थो जब बेकार था, जब बस के भाड़े के अभाव में वह कितने दिन सोमा के घर से पैदल गया था—तब? सोमा तब कितनी श्रद्धा-सम्भ्रम और मोह-ग्रस्त दृष्टि से पार्थो को देखा करती थी।

और इस वक्त व्यंग दृष्टि से देख रही है। जिस दृष्टि से आजकल पार्थो की बहन भी अपने भाई को देखती है।

नौकरी करने जा कर पार्थो ने ऐसा ही अपराध कर डाला कि दो-दो लड़कियों की श्रद्धा खोई, प्यार खोया।

पार्थो क्या कम से कम एक लड़की के आगे, अपना खोया हुआ गौरव लौटा पाने की कोशिश करे?

लेकिन कैसे करे?

छोटा बन जाए?

झुक जाए?

बेवकूफी करे?

सोमा की इसी बात के उत्तर में कह दे, 'सोमा, इतने दिनों बाद आ कर क्या हम दोनों सिर्फ लड़ाई करेंगे? किसके पास कितने अस्त्र हैं यही दिखाएँगे? मैं ही 'तुम्हारे लिए' क्यों नहीं? जैसे ही याद आया कि बहुत दिनों से तुम्हारे पास नहीं आया हूँ तभी क्या मेरे मन में खूब तकलीफ नहीं हुई थी?'

तुम्हारा यह खूब खींच कर बाल बाँधना, यह कच्चे नारियल सा मुँह, याद आते ही दौड़ कर आने की इच्छा क्या नहीं हुई है? फिर? फिर क्यों इस सुन्दर शाम को हम पत्थर फेंकने में बरबाद कर डालें?

न, नहीं, यह संभव नहीं।

इतना छोटा नहीं हुआ जा सकता है।

और, क्यों हो?

सोमा, ऐसी कौन सी कीमती चीज है?

इसके अलावा पार्थो कोई सोमा को सर्वस्वदान की प्रतिश्रुति तो नहीं दे बैठा है।

गनीमत है कि नहीं दे बैठा है।

पार्थो ने सोचा, खूब बच गया है। नहीं तो उसी बात को लेकर नाक से रोने बैठ जाती, नहीं तो दिवेन्दु से कहती, और हो सकता था दिवेन्दु दोस्तों की महफिल में उसको इसी बात के लिए अपदस्त करता।

हालांकि ऐसे दोस्तों की मैं केयर नहीं करता हूँ—पार्थो ने मन ही मन

कहा—इतने दिनों से उनके साथ घूमता था इसी के लिए अब शर्म आती है—फिर भी—

पार्थो बारीकी से सोचने बैठा, अपने को किसी शर्तहीन अंगीकार में फँसा तो नही बैठा है।

न, न !

सिर्फ शौकीन बातों का खेल खेला है—उससे ज्यादा कुछ नही। इस उम्र में कौन नहीं करता है। यह जो कच्चे नारियल से चेहरे वाली श्रीमती सोमा है, और दो चार जनों के साथ शौकीन बातों का खेल नहीं खेल रही है—कौन कह सकता है ? क्या पता—शायद ऐसा न हो।

लड़कियाँ तो एक नम्बर की बेवकूफ होती हैं। भद्रता, सौजन्य जैसी बातों को वह प्रेम, प्रणय, समझने की गलती कर बैठती हैं। और बेचारे लड़के यही मुश्किल में पड़ जाते हैं।

काव्य या साहित्य जितना भी क्यों न रमणी को कोमल प्राण कहें, यह नही है, असल में कोमलप्राण तो पुरुष जाति है। इन लोगों की इस बेवकूफी को देख कर ही तो माया में फँस, अपने गले में फंदा डाल बैठते हैं। अपना काफिन खुद बनाते हैं।

वरना इतनी बातें सोचने के बाद भी पार्थो बैठा रहता ?

और अन्त में सोमा के हाथों की चाय पीकर और सोमा की माँ से मिल कर, सोमा की दादी की कुशल क्षेम लेकर, तब घर लौटता ? चले आते वक्त सोमा की माँ बोली—'बेटा, अच्छी नौकरी लगी है, सुन कर बड़ी खुशी हुई। काम करने की उम्र में, काम न मिलने की वजह से इधर-उधर घूमते देख, दिल दुःखी होता है। दिव्य ही को देखो न।'

पार्थो जरा लज्जित हँसी हँस कर (हाँ लज्जित हँसी ही, दिवेन्दु से पहले उसका अचानक एक अच्छी नौकरी में लग जाना, उसे घटिया बात लगी) बोला—'अचानक मिल गई और क्या ! जिस किसी मुहूर्त में चली भी जा सकती है।'

सोमा की माँ की दृष्टि शंकित हो उठी—'क्यों, चली क्यों जाएगी ? पक्की नौकरी नहीं है क्या ?'

पार्थो कहने हो वाला था—'आजकल के दिनों में नौकरी पक्की होना कोई आसान बात नहीं', लेकिन कहने का मौका नही मिला। सोमा झट बोल पड़ी—'माँ, पार्थोदा की बातें सुनती क्यों हो ? आज के युग में अच्छे ऑफिस में अच्छी नौकरी, ऐसे कच्चे धागे से नहीं लटकती है कि जरा सी हवा चली और टूट कर गिर जाए। यूनियन नहीं है ? इसके अलावा पार्थोदा का तो बड़े भारी आदमी का जोर है।'

जब तक अकेली थी सोमा तब तक तो पत्थर की दीवाल की भूमिका लिए

थी, माँ के सामने सोमा वही पुरानी बातूनी सोमा में बदल गई है। पार्थो को समझते देर न लगी कि चालाक सोमा माँ के सामने पहली सी ही रहना चाहती है।

अतएव पहले की तरह ही बाहर का दरवाजा बन्द करने के बहाने पार्थो के साथ बढ़ आई थी।

पार्थो ने कहा था—'किसी का जोर है यह खबर कौन दे गया ?'

तीक्ष्ण हँसी हँस कर सोमा बोली थी—'महाजनों की बात कोई पकड़-पकड़ कर सुना जाता है ? खबरें हवा से फैलती हैं।'

पार्थो फिर बेवकूफों की तरह कह बैठा, जिसकी वजह से बस पर बैठे-बैठे बार-बार अपने कान खींचने की इच्छा हो रही थी।

पार्थो ने कहा था—'अतिन, शुभेन्दु, टूटू यही लोग शायद बढ़ा-चढ़ा कर कह गए हैं ? नौकरी लगने के बाद से मैंने सबका स्वरूप पहचान लिया है।'

रास्ते पर पाँव रखते ही पीछे से जैसे मजा पाने की सी हँसी की आवाज सुनाई पड़ी। मन की भूल तो नहीं ? नहीं, सचमुच हँसी ही थी।

पार्थो ने कठोर प्रतिज्ञा की—अब नहीं ! क्यों ? किसके लिए इन ईर्ष्यालुओं की खुशामद करने आए पार्थो ? पार्थो के लिए क्या समाज का एक और दरवाजा नहीं खुल गया है ? उसमें सभी पार्थो का सम्मान करते हैं, इज्जत देते हैं। वह समाज बहुत अच्छा है।

फिर भी, रात के दस बजे, दुमंजिली बस की उच्चतम चोटी पर बैठ बढ़िया हवा खाते हुए, चले आते वक्त, पता नहीं क्यों, पार्थो का हृदय कुछ खोने की यन्त्रणा से विदीर्ण हो रहा था।

और बार-बार यही लग रहा था, सभी विजयी के आसन पर बैठे हैं, सोमा तक—सिर्फ पार्थो ही बुरी तरह से हार कर जाने कहाँ लुढ़कता चला जा रहा है।

पान खरीद कर खाने के बाद, उसी पान की दुकान की मूँज की रस्सी की आग से सिगरेट सुलगाते हुए वे बोले—'पार्थो कब भाग खड़ा हुआ ?'

टूटू बोला—'तभी तो ! एक एइट बी आ रही थी, झट उसी पर चढ़ बैठा।'

'आज उसकी जेब पर जबरदस्त झपट्टा मारा गया है, वही शोक संभालने के लिए शायद....।'

'ठीक है भइया, ठीक है।' टूटू बोला, 'देखना, मेरे पास रुपया होगा तो मैं क्या करता हूँ।'

'तू जो करेगा, पता है।' शुभेन्दु बोला—'आधा सिगरेट तक तो छोड़ नहीं सकता है। दियासलाई का खर्च बचाने के लिए, रास्ते पर निकलते हैं, रस्सी की आग ढूँढा करते हैं।'

'वह है, अभाव के कारण स्वभाव नष्ट—समझे ? जब होगा तब देखना।'

'जब होगा ! हुँ ! राधा भी नाच चुकी, सात मन तेल भी जल चुका।' कह-कर शुभेन्दु ने हाथ में लिए सिगरेट के जोरों से कई कश खींचे और आकाश की तरफ धुँआ छोड़ा।

अतिन बोल उठा—'कहा नहीं जा सकता है बाप, उसके भाग्य में शायद कोई काकू....।'

'ए अतिन, खबरदार ! एक भी वर्ड मुँह से निकाला तो जीभ खींच कर निकाल लूँगा।'

'ओह—ऐसी बात है ? तब तो घटना काफी आगे बढ़ी है।....माँ की कसम, हमारी तरह हतभाग्य और कोई न होगा। टूटू ने भी अच्छी खासी एक काकू की भतीजी जुगाड़ कर ली....।'

'फिर ! फिर अतिन ! याद रखना मेरी जेब में चाकू है।'

'सो बेटा, इतने 'सेपचूरियस' क्यों हो रहे हो ? अच्छी बात ही तो बोल रहा हूँ। एक एक करके सब लोग पार लग जाएँगे, एक मैं ही सिर्फ रह जाऊँगा।'

'कोई बाकी नहीं बचेगा बेटा, एक दिन सभी मरेंगे। जन्म लेने से मरना होगा, अमर कौन रहेगा ?'

और एक सिगरेट पुराने वाले सिगरेट से जलाते हुए शुभेन्दु बोल पड़ा—'ए टूटू, पार्थो तेरे प्रेम की खबर जानता है ?'

'प्रेम-प्रेम कुछ नहीं है भइया, क्यों बेकार को सिर गरम कर रहा है ? शेरनी के साथ कहीं प्रेम हो सकता है ?'

'बिल्कुल शेरनी ?'

'बिल्कुल।'

'इसके मतलब स्वाद काफी गहरा है....आ....हा....हा !'

'अतिन, फिर सावधान कर रहा हूँ। इस बार गुस्सा दिलाएगा तो पेट चीर डालूँगा।'

'अच्छा भइया, अच्छा ! लेकिन प्यारे, 'प्रेम' का नाम सुन कर इस तरह गर्जन क्यों कर रहे हो ?'

'क्योंकि वह दूसरे किसी की सीक्रेट है।'

'अर्थात् तुम्हारी उस प्रेयसी का।'

'अतिन, चाकू निकलवाए बगैर मानेगा नहीं ?'

'न....टूटू खत्म हो गया है। टूटू के तेरह बज गए हैं।....चल शुभेन्दु, हम दोनों प्रेम करके कहीं चले जाएँ।' कह कर अतिन पागलों की तरह हा हा हँसता रहा।

पेट भरा था इसलिए खड़े-खड़े पाँव दुखने लगे उनके, फिर भी खड़े रहे।

रहना ही पड़ता है, अब रॉकबाजों के लिए कहीं चबूतरे अवशिष्ट नहीं हैं।

अचानक शुभेन्दु उदास भाव से बोला—'पृथ्वी में इतना रुपया है और मेरी जेब एडवर्ड मसम की चाँद की तरह साफ—यह सोच कर तुम्हे आश्चर्य नहीं होता है ?'

'लगता नहीं है ? जी करता है इस संसार को काट-काट कर नमक लगा कर खा जाऊँ।'

'अरे भइया, यह लाइन बहुत पुरानी हो गई है। जलन और तीव्र, और भयानक, और भी रक्त पिपासु हो रही है।'

'इधर हम लोग आज तक एक भी बैंक न लूट सके, एक ट्रेन डकैती तक न कर सके....।'

'उसके लिए काफी काबिलियत चाहिए बेटा ! उसके आदमी दूसरे होते हैं। हम चाकू लेकर फिरने पर भी, कभी भी किसी का पेट नहीं फाड़ सकेंगे। सुन्दरी लड़की देख कर, भले ही आँखें तिरछी कर, सीटी बजाएँ, किसी को लेकर भाग न सकेंगे। दोनों वक्त सुसाइड करने की इच्छा रहने पर भी, किसी दिन रेल लाइन पर सिर नहीं रख सकेंगे। हम लोग कावर्ड हैं, समझे ! बिल्कुल ही कावर्ड ! किस्मत से अगर कोई काकू मामू जुट जाता है, तू उसकी पूँछ पकड़ कर किसी दफ्तर में घुस कर एक-एक कुर्सी पर बैठते ही सारी आग ठंडी पड़ जाएगी। गार्जियन द्वारा चुनी लड़की से शादी कर, ससुर के दिये फर्नीचरों से घर सजा, स्वच्छन्दतापूर्वक समय बिताते हुए सोचेंगे, जीवन की हर इच्छा पूरी हो गई है।'

'अपने प्रति यह हीन भावना क्यों है टूटू ?'

'अपने को स्टडी कर के देखा है इसीलिए।'

'न, यह शायद तेरी उसी शेरनी प्रेयसी के मग-गुण का फल है। शायद खूब लेक्चर भाड़ती है न ?'

'मेरे आगे लेक्चर झाड़ेगी ? इतना वक्त कहाँ मिलेगा ? है तो वही आदि काल की—उस पर दीदीमणीगिरी।'

'तो इस प्रणय काण्ड का फ्यूचर क्या है ?'

टूटू जोर से धुँआ छोड़ने के बाद, उड़ते धुँए के रिंगों की तरफ देखते हुए बोला—'फ्यूचर ? ठीक इसी धुएँ की तरह। पहले भीतर से धक्के खा हुश हुश-कर बाहर निकल कर आएगी। कुछ देर तक छोटे-छोटे धुँए के लच्छों की सृष्टि करके शून्य में चक्कर काटेगी, उसके बाद शून्य में विलीन हो जाएगी।'

'क्या ! क्या कभी शादी न कर सकेगा ?'

'शादी !' टूटू गम्भीर होकर बोला—'अतिन, मेरा मिजाज मत बिगाड़। निहायत आज मौज से पेट भरा है, इसीलिए इस बार बच गया। पेट खाली होता तो यहीं एक रद्दा मार बैठता।'

'लेकिन तू क्या सोचता है, वह शेरनी शादी किए बगैर मानेगी ?'

'क्यों बक-बक कर रहा है ? जानता है, आज इसी शादी की वजह से माँ के साथ एक हाथ हो चुका है।'

'क्या ? तेरी माँ इस बेकार लड़के की खुशामद कर रही है शादी के लिए ? माँ कसम—तेरी माँ क्या है रे—साक्षात् भगवती। आ....हा।'

टूटू ने लगभग शुभेन्दु का कन्धा दबोच कर पकड़ लिया। बोला—'खुशामद कर रही है ? शादी के लिए ? मैंने यही बात कही है ? सूअर कहीं का! अरे बाबा, पड़ोस का मामला है या नहीं। कानाफूसी होते-होते मेरी सिंहवाहिनी मातृ-देवी के कर्णगोचर हुआ है कि उनकी लड़की के प्रेमसागर में मैं तैर रहा हूँ। अब कहाँ छुटकारा है ? पुत्ररत्न को बुला कर कड़ा निर्देश दिया गया है—'पहले दूसरी जगह फ्लैट किराए पर लो फिर शादी के सपने देखना।'....मैं कोई सुबोध लड़का नहीं हूँ....बुरी तरह से सुना दिया। कहा, मैं शादी के सपने देख रहा हूँ, ये बात तुमसे कही है ? जो साला शादी करता है वह सात पुश्त गधा है।'

'माँ अग्निमूर्ति हो उठी। बोली—'ये भी कोई कहने की बात है ? सातपुश्त गधे न होते तो वंश में तुम सा कुलांगार जन्म लेता ? लेकिन यह भी कहे देती हूँ—शादी किए बिना शरीफ घर की लड़की से सिर्फ गप्पें हाँकते रहोगे, मैं यह बरदाश्त न कर सकूँगी।'—बात सुनो! जैसे किसी नाबालिग लड़के को धमका रही है। क्या कहूँ, बेकार होने की वजह से ही तो ऐसे लक्ष्मीविहीन घर में पड़ा हूँ ? वरना कब का नाक के सामने से सूटकेस लटका कर निकल जाता। ओ....फो, कुछ भी मिल भर जाए तो एक मिनट नहीं...।'

'अरे छोड़ भी।' अतिन हा हा कर हँस उठा—'पार्थो भी ठीक यही कहता था। मैं भी कहता हूँ, हालांकि उसकी तरह इतना जल भुन कर नहीं। पार्थो को देख कर लगता था जब अपने खर्चे से चलाने की क्षमता होगी उसके दूसरे ही दिन वह घर से निकल जाएगा। लेकिन अब देखो ? कैसा 'गोपाल अत्यन्त सुबोध बालक है'। उस दिन देखा, बाजार से केला खरीद कर तेजी से आ रहा है। मैं बोला, मामला क्या है ? तू बाजार में ?...सो जरा शर्माता हुआ बोला, 'माँ का मंगलवार है, सिर्फ चिउड़ा दूध खा रही थी इसीलिए....' जल्दी से चला गया। 'अभी आ रहा हूँ' कह कर माँ को बैठा आया था, चलूँ। 'समझ ले। आज माँ के मंगलचण्डी के लिए केला, कल बहू के लिए साड़ी, परसों बेबी फूड, तरसों फिर नर्सिंगहोम की सीट, यही चलता रहेगा। उस साले के बारह बज गए हैं!'

'सभी के बारह बजेंगे।'

'मेरे बारह कोई नहीं बजा सकता है।' टूटू ने सगर्व कहा—'सिर्फ यही इच्छा है कि एक गुच्छा केला खरीदने जैसी नौकरी नहीं बल्कि सबको दिखा देना चाहता हूँ कि बड़े आदमी बनना किसको कहते हैं।'

'वैसा तो हम सभी चाहते हैं।'

'सिर्फ चाहना ही नहीं—' टूटू ने दम्भ से कहा—'मैं करके रहूँगा। रुपये जैसी चीज को कैसे खुल्लम-खुल्ला, फैला कर, बिखेर कर, उड़ा कर, बरबाद कर दिया जा सकता है, एक बार देख लूँगा जी भर कर।'

'ऐसा तू क्या अकेला सोचता है ?'

शुभेन्दु मुस्कुरा कर बोला—'मैं तो कल्पना के रथ पर चढ़ कर जब रास्ते पर निकलता हूँ तब भिखारी को एक मुट्ठी दस रुपये के नोट देता हूँ, टैक्सी ड्राइवर को सौ का नोट पकड़ा कर चेन्ज नहीं लेता हूँ, होटल में घुस कर तुम लोगों को 'जितनी इच्छा' खिलाता हूँ, 'बार' में घुस कर खुद जितनी इच्छा भर 'विलायती' पीता हूँ और....।'

'रख तेरा और ! तू तो तब भी अपने इस कल्पना के रथ पर अकेला घूमता है, मैं तो हर समय मोटर में दर्जन भर लड़कियाँ चढ़ाए....।'

'गप्पें बन्द कर ! एक ही लड़की के मैनेज करने का दम नहीं। आज कल की लड़कियाँ जैसी हो रही हैं ! ओफ ! सिर्फ फनवाली, कोबरा ! जरा ताको तो मारने आती हैं।'

'मस्तान लड़कियों की भी कोई कमी नहीं है।' टूटू ने फिर सिगरेट के धुंए से अपने भविष्य की तस्वीर तैयार करके उड़ा दी—'शाम को किसी भी पार्क में जाकर देख। एकएक जगह, एकएक जगह मस्तान लड़कियाँ जमघट किए बैठी, घंटों मजाक कर रही हैं। उधर छोटी-छोटी लड़कियाँ, बदन से स्कूल की महक आ रही है। कोई कोई साड़ी में, लेकिन ज्यादातर लहँगा पहने हुए, लेकिन उनकी बातें अगर सुनो।....एक बार मेरा एक भांजा, एक झुण्ड के पल्ले पड़ गया था, लौंडा ऐसा दौड़ कर घर आया—लगभग रवीन्द्र स्टेडियम के उस रात की लड़कियों की तरह।'

'लड़कियों के हाथ से निकल लड़का भाग आया ?' टूटू ने घृणा से मुँह तिरछा कर लिया—'कितना बड़ा लड़का ?'

'अरे, बड़ा लड़का है। पार्ट-टू दिया है। लेकिन जरा सनातनी घर का लड़का है न, अभी भी बुद्धू रह गया है। कहने लगा, रिची रोड के उस पार्क में अकेले बैंच पर बैठा था। कुछ लड़कियों ने जाकर कहा—'ओ दादा, जरा हट कर बैठिए न, तब से खड़े-खड़े पाँव दुखने लगे हैं। जरा बैठ जाएँ।'

वह बेचारा जल्दी से उठ खड़ा हुआ। लड़कियाँ ही ही करके हँसती हुई बोलीं—'आ हा हा, दादा उठते क्यों हैं ? सोने के कार्तिक सा चेहरा देख बगल में बैठने आई, और आप उठ कर चले जा रहे हैं।' वह भाग्यहीन वैसा ही बुद्धू है, 'मीठी मीठी बातें सुना देनी चाहिए थीं जिससे दीदी मणियाँ ठंडी पड़ जाएँ। उसकी जगह लौंडा घबड़ा कर भाग खड़ा हुआ। कह रहा था, पीछे से लड़कियाँ खूब हँसीं।

उसका तो घर आकर भी हार्ट पैल्पिटीशन हो रहा था। पीछे से लड़कियाँ बातें फेंक कर मार रही थी—'इस उम्र में दादा धोती क्यों, अच्छे नहीं लग रहे हैं। और अचानक, लड़कियाँ खदेड़ेंगी तो फँस कर गिर आएँगे। पैन्ट शुरू करिए, पैन्ट पहनिए। न हो हम लोग चंदा करके दर्जी का बिल दे देंगे।'

'नारी प्रगति।'

कह कर टूटू अनमनेपन से धुंआ उड़ाने लगता है।

'जबकि यह लोग सब अच्छे शरीफ घरों की लड़कियाँ हैं।'

'हम भी तो अच्छे-अच्छे शरीफ घरों के लड़के हैं शुभेन्दु।'

'वह अलग बात है। लेकिन लड़कियाँ....।'

'यह सब बेकार बातें हैं। हमेशा का संस्कार! आजकल लड़कियाँ जब यह सब कर रही हैं जो लड़के कर रहे हैं, तब लोफरी में पीछे क्यों रह जाएँ? वे भी धुंए उड़ाएँगी, ड्रिंक करेंगी, रास्ते पर खड़े होकर हा हा करेंगी। और क्यों न करें? दूसरे देशों में नहीं हो रहा है? सभी देशों का सारा जंजाल घर में लाकर भरेंगे और आशा करेंगे हमारा घर वैसा ही गोबर से लिपे तुलसी के आसपास सा पवित्र रह कर अँधेरा दूर करे—यह अब नहीं हो सकता है।'

'तेरी शेरनी ने यह सब तुझे सिखाया है, क्यों रे टूटू?'

'मैं तुम लोगों की तरह सिखाई हुई बोली नहीं बोलता हूँ—समझे?' घृणा से टूटू ने मुँह टेढ़ा कर लिया। यह टूटू का मुद्रादोष है। जब तब घृणा से मुँह टेढ़ा कर लेना। बहुत अधिक सिगरेट पीने की वजह से उसके होंठ काले और मोटे हो गए हैं, उसकी अंगुली में निकोटिन का स्थायी निशान पड़ गया है। इधर टूटू रोजगार करता ही नहीं है।

टूटू की जेब मार कर सबका काम चलता है और बीच-बीच में वे पूछते—'इतनी सिगरेट कहाँ से जुगाड़ करता है, बता तो। हमारी तो हिसाब करते-करते जान निकल जाती है। तू क्या करता है? माँ के बक्स में से खूब झाड़ता है क्या?'

'मेरे माँ के बक्स से?' टूटू फिर होठों को उसी भंगिमा में सिकोड़ता—'अभी कहाँ नहीं, सिंहवाहिनी हैं? हथियाता नहीं हूँ, एक आँख जरा सिकोड़ कर बोला—'पिताजी देते हैं। माँ से छिपा कर।'

'पिता जो देते हैं? माँ से छिपा कर? तूने तो ताज्जुब में डाल दिया टूटू। धत्, बेवकूफ बना रहा है।'

'बनाने से लाभ?'

कह कर टूटू ने फिर आकाश की ओर धुंआ छोड़ा।

'आज तक तो नहीं देखा—' शुभेन्दु बोला—'कि कोई बाप ऐसा 'माई डियर' हुआ है। बल्कि माँ लोग ही पिता जो से छिपा कर—लगता है तेरे पिता जी तुमको विशेष रूप से प्रेम करते हैं।'

'नहीं जानता।' टुटू ने आधी पी हुई सिगरेट फेंकते हुए कहा—'मेरे पिता एक दुर्बोध-जीव हैं। कभी लगता है प्यार से दे रहे हैं कभी लगता है घृणा से दे रहे हैं और भंगिमा—बिल्कुल निर्विकार हर महीने की तनख्वाह लाकर माँ के हाथों में देने से पहले ही शायद मेरे लिए हटा कर रख देते हैं। किसी वक्त मुझे अकेला पाते ही लिफाफे में रख कर आगे बढ़ाते हुए कहते हैं—'तुम्हारी माँ के कानों में बात न जाए तो ही भला है।' एक दिन मैंने तेज आवाज में कहा था—'इतना भी आप खुल्लमखुल्ला करने का साहस नहीं रखते हैं ? मैं आपका न तो अवैध सन्तान हूँ, न वही मेरी विमाता है।' सो उनके चेहरे पर इतनी सी रेखा तक न खिंची। बोले—'लेकिन उन्हें न मालूम होने से तुम्हारा क्या हर्ज है ?'

मुंह पर सुना दिया, 'इसका कोई कारण भी तो नहीं है। यह रुपए आपके अपने रोजगार के हैं। आप फादर्ड हैं इसीलिए....'

'मुँह पर कह दिया ?'

अतिन के पिता नहीं हैं, इसीलिए शायद अतिन के दिल में बाप के लिए कहीं दूसरे भाव हैं। इसीलिए लगभग चौंक कर बोल बैठा—'यह बात तुमने पिताजी से कह दी ?'

'क्यों नहीं कहूँगा ?' टुटू बोला—'मैं उस आदमी को....माने क्या कहूँ.... घृणा तो नहीं....नापसन्द करता हूँ। उन्हें देखने से ही इच्छा होती है कि उनके सामने से 'अच्छा चला' कहता हुआ निकल जाऊँ।'

'जबकि तेरे पिता जी तुझे अच्छी तरह से जेबखर्च देते हैं।'

'उसीलिए। उसीलिए तो। वह जो दीवाल की ओर मुँह कर रुपए बढ़ा देते हैं और मुझ साले को हाथ बढ़ा कर लेना पड़ता है, उसी से....सारे बदन में लगता है कोई काट-काट कर नमक छिड़क रहा है। एक बार मैं इस आदमी को अमीर बन कर दिखा देना चाहता हूँ।'

'टुटू, युक्ति बहुत सौजन्यपूर्ण नहीं है।'

अतिन टुटू की जेब टटोल कर सिगरेट निकालते हुए बोला—'जो कुछ भी हो बाप हैं।'

'इसीलिए तो। इसीलिए बीच-बीच में सिर में खून खौलने लगता है। एक असहाय जीव के निरुपाय होने का मौका पाकर, वह भावलेश हीन चेहरे वाला आदमी और वह सिंहवाहिनी देवी क्यों माँ-बाप बन बैठेंगे ? सोचता हूँ तो सिर में इंजन चलने लगता है।'

शुभेन्दु ने गम्भीर होकर कहा—'टुटू मुझे लगता है, तू एक दिन पागल हो जाएगा। एक तो सिर में इंजन, उस पर शेरनी से प्रेम। न, तेरे लिए शोक हो रहा है टुटू।'

'तू अपने लिए शोक कर।' कह कर टुटू अचानक चल दिया। शुभेन्दु उसको

जाता देखता रहा। फिर बोला—'यह साला रुपया पैदा करेगा ही।'

अतिन दार्शनिकों की सी हँसी हँस कर बोला—'कुछ भी कहना कठिन है। हो सकता है बड़ी-बड़ी बातें करते-करते बूढ़ा हो जाए। उसके बाद धागे लटकते पैन्ट और गर्दन के पास से फटी शर्ट पहन कर रेस के टिप्स देता फिरेगा और हाथों में आठ आना आते ही देशी माल खाएगा।....तूबड़ में शोरा ज्यादा रहने पर आग ऊपर उठने से पहले तूबड़ की खाल फँसती ही है।'

'जो भी कहो, उसका बाप सहृदय मैन है। लड़के का कष्ट देखा नहीं जाता है इसीलिए....'

'या कहीं दूसरे की जेब काटने न जाए इसीलिए....'

'भद्र महाशय करते क्या है ?'

'कार्पोरेशन में कुछ हैं—'

'ओ, इसीलिए!' शुभेन्दु हँसा....'अब रहस्य समझ में आया। दूध छूना नहीं पड़ता है। तन्ख्वाह तो सिर्फ 'फॉर शो।' जेब में सब मौजूद रहता ही है।'

जली सिगरेट जूते के नीचे घिसते हुए अतिन बोला—'अच्छा शुभेन्दु, तुझे क्या लगता है ? उस तरह की एक-एक कुर्सी पाते ही हम लोग भी क्या नीति-कीति की बातें, जले सिगरेट की तरह जूते के नीचे घिस कर, दो पैसे कमाने लगेंगे ?'

'अलबत् !' शुभेन्दु बेपरवाह होकर बोल उठा—'मैं तो रात दिन इसी चिन्ता में रहता हूँ। किस तरह के काम में नाक डालूं कि बाईं जेब में कुछ आए।'

उदास आवाज में अतिन बोला—'शैतान ही जानता है। अन्त में तू ही खून पसीना एक करके ऊपर वाले को खुश करने की कोशिश करता रहेगा और आफिस की मेज से एक पिन तक लेना दुर्नीति समझेगा।'

वे लोग इसी तरह से समय काट देते हैं।

अर्थहीन, प्रयोजनहीन, अन्ट-शन्ट बातें करते। इसका कारण है 'समय' नामक चीज उनमें पत्थर सी भारी होकर जम गई है। यह प्रयास उसी को झाड़ फेंकने का है।

× × ×

पार्थो जब घर लौटा, काफी रात हो गई थी। क्योंकि सोमा के घर से निकल कर पार्थो एक गलत बस पर चढ़ गया था और उल्टी तरफ चला गया था।

गलती समझ जाने पर भी पार्थो उतरा नहीं। दुमंजिली बस पर बैठ कर जो आराम मिल रहा था उस आराम को तभी छोड़ने की इच्छा नहीं हुई। सोचा, चलो उल्टी तरफ अन्त तक चलूं, उसके बाद सीधा रास्ता पकड़ लूंगा।....उसी अन्त तक जाते-जाते पार्थो को अचानक ही लगा कि नौकरी लगने के बाद मुझे

सोमा को एक उपहार देना चाहिए था। कुछ सोमा को माँ को और सोमा की दादी के लिए कुछ फल-वल, बुढ़िया की समझने की शक्ति क्षीण होने पर भी खाने के प्रति खूब खिचाव है। अच्छा खाने-पीने से परितुष्ट होती हैं और खाना पसन्द न आने पर, हाथ-पाँव पसार कर, लड़के का नाम लेकर रोना शुरू कर देती हैं।....बहुत दिनों पहले सोमा ने हो बताया था। लगभग हँसते हुए कहा था—'समझ ठीक न होने पर भी इन्हें लेकर परेशानी कुछ कम थो है नहीं ? दादी को फल पसन्द है, इसलिए पिता जी अक्सर ही फल-वल ले आते थे।....अब दादी की धारणा है कि वे नहीं हैं इस लिए फल नहीं आता। रुपया न होने की वजह से नहीं आ रहा है, यह वह समझ नहीं सकतीं।'

उस समय पार्थो नौकरी नहीं करता था। उसने सोचा था—'अगर कभी रुपया-बुपिया होगा तो सोमा की दादी के लिए कुछ फल-वल ले आऊँगा।'

रुपए होने के सम्पर्क में पार्थो की कोई स्पष्ट धारणा नहीं थी। संजय, काकू के मित्र के दफ्तर की नौकरी का तो स्वप्न तक नहीं देखना था। उस 'बेकार' दशा में भी कभी परिवर्तन आएगा, ऐसी धारणा तक न थी। फिर भी सोचा था अगर कभी रुपया-बुपिया होगा....।

दो-तीन बार तनख्वाह मिल चुकी, फिर आज ही कल में मिलेगी, और इस बीच एक बार भी याद नहीं आया कि सोमा की दादी नाम की कोई जीव भी इस लोक में है।

इसके अलावा सोमा।

सोमा ने तो सुना है कि पार्थो को अच्छी तनख्वाह वाली नौकरी मिली है। उसे जरूर आशा थी कि पार्थो उसके लिए कुछ उपहार लेकर हो मिलने आया होगा।

पार्थो का मन खिन्न हो गया।

पार्थो ने सोचा, वह कितना खराब है। उसी समय उसकी नजर सामने बैठे एक व्यक्ति पर गई। बढ़ी हुई दाढ़ी, कैसा एक असहाय सा चेहरा, अधमैले कपड़े-लत्ते, हाथ में एक थैला।

बगल के व्यक्ति के प्रश्न के उत्तर में कहते सुना—'इधर का बाजार जरा सस्ता है, इसीलिए लौटते वक्त इधर ही से खरीददारी करके ले जाता हूँ।'

उसके गले की आवाज में असीमित क्लान्ति की झलक थी। सुन कर लगा जैसे युग-युगान्तर से यह आदमी पृथ्वी भर में 'सस्ता बाजार' ढूँढ़-ढूँढ़ कर सौदा करता आ रहा है। इस सौदा ढोने से उसे किसी दिन छुट्टी नहीं मिलेगी।

अच्छा। क्या पार्थो के पिता जी भी इसी तरह दाढ़ी बनाने के समय की कमी के कारण, ऐसी बढ़ी हुई दाढ़ी लिए रास्ते पर निकलते हैं। इसीलिए पार्थो को लगा था, यह आदमी देखने में पिता जी की तरह है।

और तभी पार्थो को, सोमा के लिए शौकीन उपहार, उसकी दादी के लिए फल लेकर इस मोहल्ले से उस मोहल्ले जाने का दृश्य, बड़ा ही अवास्तविक और असंगत लगा।

पार्थो के मन में आया कि इच्छा करे तो पार्थो के पिता जी के इस समयाभाव को दूर कर सकता है। कम से कम दाढ़ी बनाने का वक्त पिता जी निकाल ही सकते हैं, अगर पार्थो जरा अनुकूल हो।

पार्थो जानता तक नहीं है कि सारे दिन पिताजी क्या-क्या काम करते हैं। फिर भी पिताजी की बात याद आते ही उसके मन की आँखों के आगे जो दृश्य आता उसमें पिताजी कुछ न कुछ करते होते। या तो बोतल में दूध लाते होते, या कटोरी में तेल, या दोने में कुछ और। नहीं तो थैले में से बाजार से लाई चीजें निकाल कर सजाते होते, या फिर अपनी बनियान, झाड़न, अंगोछा, साबुन से फींचने के बाद आंगन में तान-तान कर सूखने डाल रहे हैं। या आंगन वाले नल से पानी ले-लेकर स्नान-गृह की हौदिया भर रहे हैं। कहने का मतलब कि कुछ न कुछ कर ही रहे हैं, जैसे इससे उनका छुटकारा नहीं।

देख कर पार्थो का सिर गरम हो जाता। लगता, यह सब पिताजी का शौक है। इन बेकार के कामों की कोई जरूरत नहीं है।

लेकिन आज पार्थो को लगा—मैं चाहूँ तो पिताजी का काम कम कर सकता हूँ। नहीं तो पिताजी भी इस आदमी की तरह बातें करने लगेंगे।

मेरे घर का मामला, कौन संभाले इसका ठिकाना नहीं, मैं चला दूसरे के यहाँ की चिन्ता करने।

पार्थो मानों चगा होकर बैठा।

कुछ देर पहले सोमा के प्रति अपनी उदासीनता की बात सोच कर दुःखी हो रहा था। अब जैसे उसे कंधे से झाड़ कर उतार देने से चैन मिला। पार्थो मानसिक भार वहन नहीं कर पाता। पार्थो किसी भी तरह से उस भार से मुक्त हो जाए तो जी जाए। अपने घर की समस्याओं पर सोचने का संकल्प करते ही जी हल्का हो गया।

उसके बाद ही पार्थो दुमंजिली बस से उतर कर ठीक बस पर चढ़ बैठा।

घर में घुसते न घुसते माँ बोल उठीं—'क्यों रे, बड़े आदमी के घर पर दावत खा आया, क्या?'

माँ के चेहरे पर, छोटी लड़की सी, खुशी की चमक। और उस बचकानी चमक की आभा की वजह से माँ कैसी बेवकूफ सी लग रही थी।

पार्थो उस बुद्धू और बच्चों की सी महिला का क्यों सम्मान करे?

देखते ही हँसी आ गई। उसे लगा कि आजकल माँ जान-बूझ कर उसके सामने बच्ची बन जाती है। अतएव पार्थो ने बच्चों-सी ही अवहेलना दिखाई—

'कितनी देर तक सोई थी ?'

पार्थो की माँ इस तरह के एक बेतुके प्रश्न को सुन अवाक् रह गई। बोली—'यह कैसी बात हुई ?'

'ठीक बात ही हुई। देर तक सोता न हो तो कोई शाम के वक्त सपने नहीं देखता है।'

'बातें सुनो इसकी ! अभी मैं सोते में सपना देख रही हूँ ?'

'और नहीं तो क्या ?'

माँ तीक्ष्ण स्वरों में बोली—'क्यों ! तू क्या संजय लालाजी के साथ उनकी साली के यहाँ दावत खाने नहीं गया था ? फिर....उन लोगों ने जो कहा....।'

माँ लड़के का चेहरा देख कर बात अधूरी छोड़ रुक गई।

'किसने क्या कहा है ?'

माँ ने बड़बड़ा कर कुछ कहा।

सुनाई नहीं पड़ा।

भद्रा कमरे से निकल कर बोली—'तुम्हारे ऑफिस के लोगों ने कहा है कि तुम घोष साहब के साथ दावत खाने गए हो।'

दाँतों से होंठ काटते हुए पार्थो बोला—'ऑफिस के लोग घर पर आकर कह गए हैं ?'

भद्रा ने गम्भीर होकर कहा—'न, इतने परोपकारी इस जगत् में कौन है कि घर तक आकर कह जाएँ ? तेरी देरी देख, पिताजी ने ही घबड़ा कर मुकुल बाबू के यहाँ से तेरे आफिस में फोन किया था। जो ऑफिस में ओवर टाइम करते हैं, उन्हीं में से कोई रहा होगा। बोला....।'

अचानक पार्थो पलट कर खड़ा हो गया। चिल्ला कर बोला—'मेरी देरी देख, उस ऊँचे नाक वाले मुकुल बाबू के घर जाकर फोन किया गया ? क्यों ? थाने में फोन क्यों नहीं किया ? हॉस्पिटल में ? ताज्जुब है ! लगता है अन्त तक इस घर में रहना न हो सकेगा।'

यह बात पार्थो के मुद्रादोष में शामिल है।

बेतुका कुछ होते ही पार्थो कह बैठता है, 'अन्त तक, रहा न जाएगा।' बराबर ही कहता है, लेकिन अभी जो बात कही वह इस गृहस्थी के लिए बड़ी बात थी। पार्थो के पिताजी गहरी साँस छोड़ कर वहाँ से हट गए। उसकी माँ ने, बड़ी मुश्किल से, आँखों में लाए आँसुओं को रोकने के लिए मुँह फेर लिया। और भद्रा कह उठी—'वह तो चलेगा ही नहीं भइया। यह तू न भी कहता तो भी समझा जा सकता है।'

इससे पहले जब पार्थो ऐसी बातें करता था तब यही भद्रा उसकी बातों का समर्थन करती थी। कहा करती थी—'ठीक कहा है। फिर भी तेरी इच्छा पूरी

होंगी, मेरी वह भी नहीं। मरे बगैर निकलने का उपाय नहीं है कोई।'

तब पार्थो बहन के सिर पर मुक्का मार-मार कर कहता—'क्यों? शादी का क्या होगा? बाजा बजाती, इस घर को छोड़ कर चली नहीं जाएगी?'

'शादी? क्यों भइया हँसाते हो?'

कह कर सचमुच ही भद्रा झूम-झूम कर हँसने लगती। लेकिन अब परिस्थिति बदली है—इसीलिए बेरोकटोक भद्रा कह सकी—'यह तो जानी हुई बात है रे भइया! तू न भी कहता तो भी समझा जा सकता है।'

पार्थो ने उन लोगों का चेहरा सोच कर देखना चाहा, जो ऑफिस में ओवर टाइम करते हैं। बसन्त बाबू, सरोसिज सेन, विमान घोष....

जरूर वही विमान घोष होगा।

चुप्पा शैतान है।

वही 'काकू काकू' कह कर मजाक करने आता है।

अभी भी वही किया है।

पिताजी के साथ भी मजाक किया है।

पार्थो का शर्म से सिर झुका जा रहा था।

इधर पार्थो की माँ, अमीर आदमी के घर दावत खाने की बात पर खुशी से गद्गद् हो रही हैं मान-सम्मान नाम की चीज बूंद भर भी नहीं है।

नहीं है, जरा भी नहीं है।

नहीं तो कोई उस मुकुल बाबू के घर टेलीफोन करने दौड़ता है? जो मुकुल बाबू नई कार खरीदने के घमण्ड में मर रहा है और नया टेलीफोन लगते ही पड़ोसियों को सुना-सुना कर बोला था—'फोन तो लगा, अब घर पर सदाव्रत खुल गया। अब तो सारे पड़ोसियों को रात दिन फोन करने की जरूरत पड़ जाएगी। ऐसे भिखारी पड़ोसी है हमारे।'

पार्थो संजय घोष की कार पर चढ़ कर आता-जाता है इसलिए पार्थो के पिता जी अपने को मुकुल बाबू के गोत्र का आदमी समझते हैं? इसीलिए उनके ड्राइंग-रूम में जा खड़े हुए थे?

पार्थो छटपटाया। बोल उठा—'ऑफिस में जब लोग थे, तब रात के आठ बजे से ज्यादा वक्त न हुआ होगा। और तभी तुम लोगों को लगा कि मैं मोटर एक्सीडेन्ट होने की वजह से हॉस्पिटल के बेड पर पड़ा हूँ? इसीलिए खबर लेने के लिए दौड़ना पड़ा? मैं क्या कभी काफी रात गए घर नहीं लौटा हूँ?'

'लौटोगे क्यों नहीं?' भद्रा हँसी—'पहले तो रात के दस बजे तेरी शाम शुरू होती थी। लेकिन अब तो वह दिन नहीं है। अब तो तू 'गोपाल अति सुबोध बालक है'—बन गया है। पिताजी चिन्ता नहीं करेंगे? खबर पाकर निश्चिन्त हुए कि चलो मोटर चढ़ कर दूर तक घूमने गया है, अच्छा-बुरा दो कौर खा रहा है....।'

'चुप ! असहनीय।'

कह कर पार्थो अपने कमरे में जा घुसा।

और बिना बत्ती जलाए बिस्तर पर लेट कर इस घर में जन्म लेने के कारण अपने को धिक्कारने लगा।

पार्थो और भी सोचता, दुष्ट ग्रहों के फेर में पड़ कर जिसे जहाँ जन्म नहीं लेना चाहिए, अगर वह वहाँ पैदा हो ही जाता है तो क्या हमेशा इस 'जन्म लेने' के ऋण के बोझ को ढोना पड़ेगा ?

उस, खुशी से बच्ची-सी माँ को 'स्वर्गादपि गरीयसी' सोचना पड़ेगा ? उस आत्म-सम्मान, ज्ञानहीन व्यक्ति को 'पिता स्वर्ग, पिता धर्म' कह कर दण्डवत् करना पड़ेगा ? और इस भद्रा को, जो एक नम्बर की धोखेबाज है, उसे दुलारी बहन कह कर सिर चढ़ाना होगा ?

ताज्जुब है ! पहले वह कितनी समझदार लगती थी ? और जैसे ही मेरी नौकरी लगी—

और मैं भी, आश्चर्य है !

और मैं नौकरी लगने के बाद से, सोमा को कुछ उपहार न देने की बात सोच कर, देना होगा सोच कर, शर्म से मरा जा रहा हूँ। धोखेबाज है, खूब धोखेबाज है भद्रा।

अपनी बहन है फिर भी उसे अब तक नहीं पहचान सका था मैं। सोचता था वह मेरी स्वजाति है। बिल्कुल नहीं, बिल्कुल नहीं, वह सिर्फ मेरे माँ और पिताजी की स्वजाति है। अब वह तीनों एक हैं, मैं अकेला हूँ।

फिर मैं क्यों न अपनी अच्छाई, अपने स्वार्थ की बात सोचूँ ? कल ही मैं सोमा के लिए कीमती उपहार ले जाऊँगा, सोमा की दादी के लिए फल। अब से तनख्वाह मिलने पर अपने पास रखूँगा—माँ को कुछ दूँगा, बस कोई कुछ सोचेगा ? कोई परवाह नहीं। मैं बच्चा नहीं हूँ। शुरू से ही यही करना था, शराफत दिखा कर बेवकूफी की है।

मैं किसी के साथ शराफत नहीं करूँगा।

पृथ्वी से घृणा हो गई है।

लेकिन पार्थो ने यह काम शराफत दिखाने के लिए नहीं किया था। माँ का खुशी से चेहरा देखने में कैसा होगा, यही देखने की आशा से सारा रुपया माँ के हाथों में देकर शर्माई आवाज में बोला था—'सारा रुपया तुम गृहस्थी के पीछे मत खर्च कर डालना। अपने लिए, सिर्फ अपने शौक के लिए, अलहदा से कुछ रख लेना।' यह बात इस वक्त याद न रही।

यह भी याद न रहा कि माँ जब खुशी-खुशी चेहरे और डबडबाई आँखों से बोली थी—'यह गृहस्थी मेरा सबसे बड़ा शौक है बेटा। इस गृहस्थी में खर्च करने

के मतलब ही है मेरे शौक का मिटना।' उस वक्त माँ का वह मुँह देख कर लगा था कि संजय काकू की सहायता से हो या कैसे भी हो, यह नौकरी सार्थक है।

उसके बाद हालाँकि माँ ने कहा था, 'सचमुच ही मैं यह पाँच-पाँच सौ रुपए गृहस्थी पर नहीं खत्म करूँगी बेटा! इसमें से मैं तेरी शादी के लिए रुपए जमा करूँगी। तू तो लड़की के बाप से दहेज-वहेज नहीं लेने देगा। इसीलिए रुपए जमा किए बगैर शादी भी न होगी।'

हँस कर पार्थो ने कहा था—'भगवान् करे तुम्हारे पास एक पैसा भी न जमा हो पाए।'

'क्यों भला, बता तो?'

'तब तुम किसी तरह की बेकार की बातें दिमाग में न ला सकोगी। लेकिन माँ....भद्रा तुम्हें किस क़दर अभिशाप दे रही है, जानती हो? तुम लड़की की शादी की बात न सोच कर लड़के की शादी की बात कर रही हो।' न जाने कितने सालों से पार्थो ने इतने सहज ढंग से घर में बातें नहीं की थी। घर में कितने साल हो गए—हँसा तक नहीं है।

घर की आबोहवा हर समय गुमसुम रहती थी। एक तरफ पार्थो और भद्रा तिरछी हँसी, बेपरवाह और जैसे अभियोग के बाण कमान पर चढ़ाए, दूसरी तरफ पार्थो की माँ और पिता शिकायत और उलाहनों के तीर चढ़ाए दिवाल को बातें सुनाने के लिए तैयार रहते।

पार्थो की तनख्वाह ने सहसा एक तेज हवा के झोंके की तरह आकर भारी पत्थर हटा कर घर में खुशी का स्वर बजा दिया।

नहीं तो पार्थो नाम का जिद्दी लड़का संजय घोष नाम के आदमी को 'काकू' कह कर पुकारने लगता? और उनके लिए कभी राजभोग लाने बाजार जाता?

भद्रा हालाँकि इसके लिए व्यंग करने से नहीं चूकती है लेकिन उधर कान डालने से फायदा क्या? भद्रा भद्रता बनाये रखने में विश्वास नहीं करती है। फिर भी—भद्रा को उपलक्ष बना कर घर का वातावरण सहज हुआ है।

माँ ने पार्थो की बात का जवाब देते हुए कहा—'लड़की-लड़का दोनों ही बराबर हैं—अग्राधिकार की बात है। लड़का बड़ा है, अतएव लड़के की शादी की बात पहले सोचूँगी।'

'सोचो! अगर यही इच्छा है कि लड़का घर छोड़ कर चला जाये।'

भद्रा ने मुँह तिरछा करके कहा था—'ए! देखना है।'

उसी समय से भाई के लिये मुँह तिरछा करने लगी भद्रा। क्योंकि भद्रा सोमा की बात जानती है। लेकिन एक दिन पहले तक भद्रा भइया के दल में थी इसी-लिये माँ के आगे भाई के हृदय की दुर्बलता की बात कही नहीं थी।

उस दिन, वही शुरू के दिन हालाँकि, पार्थो ने भद्रा को तिरछी हँसी की

परवाह नहीं की थी। क्योंकि घर पर माँ से, पिता जी से सहज स्वरों में बातें करने के बाद सहज होने का नशा सा हो गया पार्थो को। इसीलिये सहज बातें, जिन बातों को वह पहले हास्यकर और बुद्धूपने की सोचता था, कहने बैठा था।

बोला—'अच्छा माँ, तुम्हारे रसोई घर में एक छोटा टेबिल फैन लगा दिया जाए तो कैसा रहेगा? ओफ, खाना बनाते हुए तुम किस कदर पसीने से तर हो जाती हो!....क्यों, इसमें इतना हँसने की क्या बात है? तुम्हारा दिन का अधिकांश समय हो तो वहीं बीतता है।'

माँ के उसकी बात को 'अमृतः बालभाषितः' की तरह उड़ा देने पर बोला था—'तुम औरतें, अपने आप अपनी अवहेलना करने के कारण ही समाज का यह चेहरा हो गया है माँ। तुम लोग जानती हो कि तुम्हें कुछ नहीं चाहिये अतएव समाज भी जानता है कि तुम्हें किसी चीज का प्रयोजन नहीं है।'

'इस युग की लड़कियाँ ऐसा नहीं सोचती हैं बेटा, इस युग का समाज भी नहीं....' कह कर माँ हँसी थी।

तब से आज तक वही हँसी चल रही थी।

और पार्थो नाम का आदमी पृथ्वी से घृणा करने लगा है, ऐसा भी नहीं लग रहा था।

आज पार्थो ने स्वयं यह बात घोषित की। हो सकता है यह आकस्मिक या दीर्घ दिनों की प्रतिक्रिया हो।

लेकिन उस वक्त बगल वाले कमरे में भद्रा नामक लड़की भी यही सोच रही थी। पृथ्वी से घृणा हो गई है वरना भइया वैसा रविशमार्का हुआ जा रहा है!.... दावत में जाने की बात पकड़ जाने से खफा हो रहा है? अरे भइया, छुपा कर तुम करते क्या? कल ही तो संजय घोष के जरिये से पता चल जाता। इस बेवकूफी के मतलब क्या हुए?

हर कोई अपने ढंग से दूसरे की बातों को सोचता है। हो सकता है, स्पष्ट बात पूछ नहीं सकता है, या सोचता है यह बात छुपा रहा है। और उसके बाद ही उसके आचार-आचरण की व्याख्या करने लगता है।

भद्रा अपने भाई को पहचानती थी फिर भी भइया की गलत व्याख्या करने बैठी। पार्थो अपनी बहन को पहचानता था, फिर भी....

या कोई किसी को नहीं पहचानता है। अपने को भी नहीं। इसीलिये पार्थो अपने को 'इस्पात' सोच कर गलती की, भद्रा ने अपने को 'पैनी नजर' से सोच कर।

भद्रा भाई पर और भी खफा थी। भइया सोमा के यहाँ नहीं जाता है, सुन कर। टुटू ने खबर दे गया था। कहा था—'तुम्हारे भाई के बारह बज गये

है, समझीं ? वह उस नौकरी और नौकरी की तरक्की लेकर मशगूल रहेगा, बॉस को सन्तुष्ट करने में बॉस की पत्नी के जूते झाड़ेगा और अन्त में इस नौकरी दाता काकू की लड़की के साथ फाँसी के फंदे से लटकेगा।'

टूटू की बात सोचने लगी तो भद्रा टूटू में डूब गई।

टूटू की छटपटाहट, उसका जलना, दाह, उग्रता, कटु-वक्तव्य, सब कुछ बेहद आकर्षणीय था। टूटू भद्रा को 'शेरनी' कहता है, यह भी कितना रोमांचकारी है।

भद्रा-टूटू एक ही मोहल्ले के लड़के-लड़की हैं। बचपन से परिचित हैं, फिर भी अचानक नयी परिचय की रोशनी देख पड़ोसी आलोचना करने लगे, अभिभावकगण उद्विग्न हुए और वे स्वयं कुछ दिनों से जैसे युद्धरत दो विपक्षी दल हों।

टूटू ने भद्रा का नाम रखा है 'शेरनी'।

कारण भद्रा ने कभी एक दिन टूटू से कहा था—'और जो भी चाहे करो, प्रेम-प्रेम के बोल बोलने न आना। फिर मैं तुम्हें जिन्दा नहीं छोड़ूँगी।'

और कहा था—'फुटपाँथ उजागर करते तुम्हारे दोस्तों को देखने से कैसा लगता है, जानते हो ? सब का खून कर फाँसी पर लटक आऊँ।'

टूटू ने कहा था—'शेरनी'।

यही नाम दोस्तों की महफिल में चल निकला।

इसीलिये टूटू जब कहता—'साला, अमीर अगर न बना तो मेरे नाम पर मेंढक पालना। यह मुक्का मार कर प्रतिज्ञा करता हूँ, कि अमीर बने बगैर रहूँगा नहीं....रहूँगा नहीं, रहूँगा नहीं।'

तब उदास होकर उसके दोस्त कहते—'बेल पकने पर कौए का क्या फायदा ? तू राजा बन भी जाएगा तो हमें क्या सुविधा मिलेगी ? तेरी शेरनी बीबी क्या हम लोगों को घर में घुसने देगी ?'

'शेरनी ही मेरी बीबी होगी—यह तुम लोगों ने सोच लिया है ?'

'सोचने की क्या बात है ? यह तो तय ही है। शेरनी एक बार शिकार पकड़ने के बाद, खत्म किये बगैर छोड़ती है ?'

'अरे बाबा, रुपए, रुपया यानी कि छीटने, उड़ाने और उस पर चलने के लिये हो जाये तो शेरनी कभी शेरनी रहेगी ? नहीं रहेगी। हिरनी बन जाएगी।'

'तब तो तूने शेरनी के चरित्र का खूब स्टडी किया है ? खून का स्वाद पाकर और भी रक्तपिपासू हो जाती है—समझे ? जिनके पास एक पैसा है वह दूसरे के लिये आधा पैसा खर्च कर सकता है लेकिन जो पैसा पैरों से कुचलते हैं, वे दूसरों पर पैसे के एक कतरे की छाया तक खर्च नहीं कर सकते हैं।'

'सो मैं मर तो नहीं जाऊँगा जो तू....'

'मरेगा नहीं ? दोनों हाथों से रुपए छीटने के लिये रुपया कमाने के बाद भी तू जिन्दा रहेगा, ऐसी आशा करता है ? हा हा हा।'

टूटू के दोस्त जोर-जोर से हँसते।

कहते—'मरने के बाद प्रेतात्मा बन कर गाड़ी पर चढ़ कर घूमेगा—समझ रहा है न ? इसके अलावा—शेरनी क्या जिन्दा छोड़ेगी ? हड्डी खाएगी, गोश्त खाएगी, और चमड़े की डुगडुगी बना कर बजाएगी। जानता है, धूप से कहो ज्यादा गरम बालू की जलन होती है ? बड़े आदमी से ज्यादा बड़े आदमी की बीबी होती है।'

टूटू कहता—'किसे किस तरह ठीक करना चाहिए, मैंने बहुत सोच रखा है शुभेन्दु। औरतों का मुँह सिलना चाहिए, चाँदी की सुई से। और रिश्तेदार को ठीक किया जाता है, चाँदी के जूते से।'

उनमें से कोई-कोई चुप रहा। कुछ नाक सिकोड़ कर बोले—'सभी जानते हैं, सिर्फ उस चाँदी के बाजार का पता ही नहीं मालूम है।'

'मालूम करना पड़ेगा। इसके लिये जहन्नुम में जाना पड़े तो भी मंजूर।'

'उस जहन्नुम में ही जाना पड़ेगा—' उस दिन दिवेन्दु ने कहा था—'कुचलने लायक रुपया पैदा करने के लिए सिर्फ परिश्रम के स्वर्गीय रास्ते पर आने-जाने मात्र से नहीं होगा।'

बहुत दिनों बाद उस दिन दिवेन्दु अड्डे पर आया था। और उसी दिन कहा था—'पार्थो कितना नीच हो गया है, जानते हो ? जब से नौकरी लगी है सोमा के पास नहीं गया है। सोमा बेचारी आशा करते-करते.......पार्थो के बारह बज गये हैं।'

उस दिन सर्वसम्मति से यह तय हो गया कि पार्थो के बारह बज गए हैं।

सिर्फ स्वयं पार्थो ही यह बात नहीं जानता है। पार्थो ने संकल्प किया है कि कल से संजय घोष की गाड़ी पर नहीं चढ़ेगा। कल ही मैं सोमा के लिए कीमती उपहार लेकर उस मोहल्ले जाऊँगा....'

× × ×

बहुत सारी लड़कियाँ, असंख्य विचित्रमय प्रसंगों पर बातें कर रही थीं और रह-रह कर घड़ी देख रही थीं। भद्रा के कमरे में घुसते ही एक साथ सब शोर मचाने लगीं—'क्यों रे बाबा ! इतनी देर में वक्त मिला है ? खुद मीटिंग बुला कर, खुद ही लेट।'

'जानती हो कितनी तरह का काम रहता है ?' कहते हुए हाथ में पकड़ा भारी बैग मेज पर रख कर खुद भी एक कुर्सी पर धप् से बैठ गई भद्रा। कुर्सी उसी के लिए मौजूद थी 'क्योंकि आज की सभा की परिचालिका वही थी। और

भद्रा इस तरुणी-समिति की सेक्रेटरी भी है।

इनकी समिति का लक्ष्य क्या है, उद्देश्य क्या है, काम करने का ढंग क्या है—शायद इन बातों को स्पष्ट रूप से वह लोग खुद भी नहीं जानती है। एक लड़की को घर के निचले मंजिल में एक कमरा खाली था, उसे उसके पिताजी ने समिति को खुशी से दान दे दिया है इसीलिये कभी-कभी जितनी लड़कियाँ आ सकती हैं, आकर इकट्ठा होती है। गप्पें हाँकती है, चाय पीती है, चली जाती है।

लेकिन इन दिनों एक विशेष मामले को लेकर ये लोग व्यस्त है, और लगता है कि इतने दिनों में इन्होंने इस तरुणी क्लब का उद्देश्य ढूंढ निकाला है।

अचानक उन्हें लगा है कि यह शहर क्रमशः भयंकर रूप से अरण्य तुल्य हुआ जा रहा है। यहाँ महिलाओं का स्वच्छन्द विहार करना संभव नहीं रह गया है। कानून की जकड़, पुलिस सभी बेकार हो गया है। क्योंकि उन पर भरोसा करना प्राय. बिल्ली को पहरा देने के लिये रख जाने के समान है।

अतएव लड़कियों को अपनी रक्षा का भार अपने आप उठाना पड़ेगा। आत्मिक शक्ति-फक्ति सिर्फ बात की बात है, उससे जो भी हो आत्मरक्षा संभव नहीं। चाहिए दैहिक शक्ति, चाहिए हथियार की शक्ति।

इस नए लक्ष्य की परिकल्पनाकारिणी भद्रा है। भद्रा ने ही मीटिंग कॉल की है, इसीलिये उसके न आने तक कुछ नहीं हो रहा था।

आज के अधिवेशन का प्रधान विषय है समिति का नामकरण और कर्मपद्धति की स्पष्ट रूपरेखा तैयार कर लेना।

भद्रा के आते ही वे सब हल्ला मचाने लगीं। कारण—भद्रा को देर हुई है।

बैठते ही भद्रा बोली—'उसके बाद ? तुम लोग कितना बढ़ पाई हो ?'

'वाह हम लोग क्या करते ? तुम नहीं आई थी।'

'मैंने कहा था, कम से कम नाम ठीक कर लो—किया है ?'

'नाम ?' एक लड़की चिल्ला कर बोली—'अभी तक तो यही प्रस्ताव चल रहा था, लेकिन किसी के साथ किसी की राय यहाँ मिल सकती है ?'

'मिला लेना पड़ेगा।'

'ऐसा तुम कह रही हो न ? लेकिन कैसे होगा ?...अभी तक केतकी कह रही थी—'नाम रखो, 'महिला आत्मरक्षा क्लब'—लेकिन और लोग कह रही हैं कि इस नाम का एक प्रतिष्ठान था।'

'था तो क्या हुआ ?' पीछे से एक बोल उठी—'जगत् में क्या एक ही चीज दो बार रिपीट नहीं हो सकती है ? होती नहीं है ?'

'होने दो। किन्तु उस नाम में उस समय की दुर्गन्ध है।'

'तो फिर नाम रखो, नारी कल्याण संस्था।'

सभी छिः छिः कर उठे।

भद्रा बोली—'सुन कर लगता है खैराती प्रसूता-गृह।'

'दुर....'भगिनिदल' कैसा रहेगा ?'

'और कुछ नहीं रखा जा सकता है ?' भद्रा बैग खोल कर कागजात निकाल कर मेज पर रखते हुए बोली—'यह तो लगेगा आज से सौ साल पहले की किसी की देन है।'

'न ! मुझे तो कुछ पसन्द ही नहीं आ रहा है। जानती हूँ—होगा भी नहीं। इससे अच्छा है तू ही नाम रख।'

'मैंने एक सोचा है', भद्रा बोली—'जागृत शक्ति संस्था।'

'जागृत शक्ति संस्था ?'

दो एक जने कह उठीं—'सुनने में बुरा नहीं है, लेकिन लड़कियों का मामला है, यह कहाँ समझ में आ रहा है ?'

'समझना जरूरी है क्या ?'

भद्रा ने खड़े होकर कमर पर दोनों हाथ रखे। बोली—'यह समझना या समझाना होगा, ऐसा अगर कोई कानून है तो इन्हीं की किसी पर्त के बीच 'अबला' शब्द घुसेड़ दो। जैसे—'जागृत अबला शक्ति संस्था' अथवा 'शक्ति जागृत अबला संस्था', अथवा....।'

जिस लड़की ने प्रस्ताव रखा था, वह चेहरा काला कर हाथ बड़ों की तरफ देखती है। अर्थात् नष्ट करने के लिये उसके पास समय नहीं है, लेकिन बाकी लड़कियाँ हँसते-हँसते लोटपोट हुई जा रही थी।

भद्रा तेज आवाज में बोली—'देखो, सबसे पहले यह भूलना पड़ेगा कि हम लड़की हैं, हम अबला हैं, नारी जाति हैं। उसके बाद ही दूसरी बात होगी। मेरे विचार से—यह सड़ी-पुरानी बात अगर हम भूल जाएँ, तो यह भाग्यहीन पुरुष तो दो ही दिनों में भूल जाएँगे।'

इतना आसान नहीं है....' एक ने तर्क करने के इरादे से कहा—'जो लोग जानवर हैं, जो....।'

'अरे बाब, जानवरों के लिए तो अस्त्र साथ में रखने का प्रस्ताव पक्का ही है। एक एक नेपाल की भुजाली हर एक की साथी होगी।'

'वह तो होगा—' तार्किक लड़की बोली—'वैनिटी बैग खोल कर छुरा निकालते-निकालते तो शेर-भालू गरज कर गर्दन पकड़ लेंगे।'

भद्रा उसकी तरफ तीखा दृष्टिपात करने के बाद अवहेलना पूर्वक हँस कर बोली—'वैनिटी बैग खोल कर निकालने लगे तो यही परिणाम भाग्य में लिखा रहेगा।'

'वाह ! फिर कहाँ रहेगा ?'

'क्यों कमर में ? जहाँ फैशन करके चाँदी का गुच्छा लटका कर झुनझुना कर

बजने के लिए चाभी भूलती है।'

लड़की वह अवज्ञापूर्ण दृष्टि देख नाराज होती है। इसीलिये कहती है—'बहुत सुन्दर ! लोग देखते ही समझ जाएँगे, लडकी छुरा लिए घूमती है।'

भद्रा बाधा देकर कहती है—'समझ जाएँगे तो हर्ज क्या है ? बल्कि फायदा ही होगा। दुष्ट लोग डरेंगे।'

'वाह ! हर कोई पाजी नहीं होता है।' लड़की तर्क करने के इरादे से कहती—'जो अच्छे हैं वे भी तो दूर भागेंगे।'

इस बार सारी लड़कियाँ हँस कर लोटने लगी—'अरे, लता बहुत डर रही है, कहीं लग्न न फिसल जाए।'

'तुम लोग चुप होगी ?'

भद्रा इस तरह डाँटने के बाद ऊँची आवाज में बोली—'यह मन में जान लो कि हमारे इस असहायपन के लिए हमारी मनोदशा ही जिम्मेवार है। अब शायद वह लोग हमारी ओर मनोयोग नहीं दे रहे हैं, कहीं उनकी नजर में हमारा मूल्य घट न जाए। अतएव सारे शरीर पर विज्ञापन चिपका कर घूमो—अरे ओ महाशय, पलट कर देखिए, मैं लड़की हूँ, मिलावटहीन लड़की, आदि और अकृत्रिम लड़की। यह देखिए, अपने इस लड़कीपन को कैसा बचा कर, सजा-धजा कर लिए घूम रही हूँ जिससे आपकी नेकनजर में आ सके।....रबिश ! कहाँ लड़के तो दिन-रात नहीं सोचते है—'मैं लड़का हूँ, मैं लड़का हूँ।' एक प्रतिष्ठान खड़ा करते वक्त 'पुरुष बान्धव समिति' जैसे नाम तो नहीं रखते है ?' या 'पु-कल्याण संस्था' अथवा....

अथवा—अन्त तक कह न पाई। लड़कियों की हँसी के मारे समिति कक्ष की छत फटने का डर हो गया।

भद्रा ने मेज पर रूलर ठोंका—'खामोश ! खामोश !'

कोई खामोश न हुआ।

धीरे-धीरे आँधी रुकी।

भद्रा ने गम्भीर आवाज में कहा—'बात हँसने की नहीं, सोचने की है। सिर्फ लड़कियों को 'रूपसज्जा' का कौशल सिखाने के लिए पृथ्वी पर कितने मास्टर हैं, ध्यान से देखा है ? तुम कैसे जम्हाई लोगी, कैसे खाँसोगी, कैसे हँसोगी या कैसे शरीर पर साबुन मलोगी—यह निर्देश भी मास्टर लोग ही दिए जा रहे है। लड़कियों के रूप-यौवन को लेकर पृथ्वी पर जितना मतवालापन है, पुरुषों के लिए उसके शतांश का एकांश भी है ? नहीं। उसकी वजह है, यह पुरुषजाति अपने को अच्छी तरह पहचानती है। पुरुष के उपभोग के उपयुक्त तैयार कर लेना ही लड़कियों का ध्यान, ज्ञान और लक्ष्य है। फिर हमें प्रसाधन के लिए पाँच सौ तरह की चीजें लेकर सोचने की जरूरत क्या है ?....अरे बाबा, हमही अगर अपने को सजी

सजाई गुड़िया बना कर पुरुष नामक लुब्ध शिशुओं के सामने रखें, तो वे लोग हमें लेने की जिद् करेंगे ही। 'हम इन्सान हैं' केवल इस बात का दावा करने से ही तो नहीं होगा। 'हम इन्सान हैं', 'लड़की' नामक उपसर्गयुक्त इन्सान नहीं, सिर्फ इन्सान, यही समझ उनमें लाना है।'

तार्किक लड़की फिर फुंफकार उठी—'तब क्या कहना चाहती हो भद्रादी—लड़की अब गहने न पहनें रंगीन साड़ी न पहनें, बाल न काढ़ें....।'

'न, इस पागल को लेकर कुछ नहीं होने का। तू भइया जा, शादी करके घर गृहस्थी देख जाकर। हमलोग घूमने आएँ तो गाल में पान ठूंस कर, अप्रांग पर चढ़ाए, केरी किनारे की साड़ी पहन कर हमारी अभ्यर्थना करना। तू भी बच जाएगी, हम भी बचेंगे।....जाने दो, काम की बात एक नहीं हो रही है। सुनो, एक है—'जागृत शक्ति संस्था' नाम रहेगा या नहीं....।'

'रहेगा, रहेगा।'

'ठीक है। दूसरा—कमर में भुजाली लटकाने में कोई आपत्ति है ?'

'नहीं नहीं, आपत्ति नहीं है। उसका केस शौकीन बना लेने से किसी की समझ में नहीं आएगा।'

भद्रा खड़ी होकर बोल रही थी, बैठ गई। बोली—'होपलेस! तुम लोगों से कुछ नहीं होगा।'

'नहीं नहीं, होगा, होगा। केस शौकीन न सही।'

'न सही, अच्छा। तीसरा—रास्ते में निकलने पर एक भी सोने का गहना शरीर पर नहीं होगा।'

यह बात पहले भी उठ चुकी थी और बहुतों ने कहा भी था—'हमलोग आज-कल गहना पहनते कहाँ हैं ? हाँ, एक अँगूठी या इयरिंग, एक या दो कड़े अथवा सोने की बैण्डवाली घड़ी—यह न रहना तो संभव नहीं।'

लेकिन आज आह्वानकारिणी भद्रा मुखर्जी ही कह रही है, एक आना भर सोना भी साथ होना नहीं चाहिए। यह कुछ ज्यादती नहीं हो रही है ?

सभी एक दूसरे को देखते हैं—आँखों की भाषा में इस ज्यादती की शिका-यत थी। भद्रा अनुभव करती है।

मुस्कुराकर भद्रा बोली—'बहुत कठिन लग रहा है ? लेकिन सुनने में 'मान-हानि-मानहानि' लगने पर भी यह निश्चित सच है कि लड़कियों के शरीर से भी ज्यादा लोभनीय है सोना। सोने की चमक देख कर लोभ की आँखें चमकने लगती हैं। जरा सा भी शरीर पर रख कर यह विपत्ति बुलाई ही क्यों जाए ?'

एक लड़की बोली—'इस 'क्यों' का उत्तर तो है भद्रादी। जगत् में आदि अनन्तकाल से चोर डाकू भी हैं और लड़कियों के शरीर पर सोना भी करोड़ों सालों से है। विपत्ति के डर से लड़कियों ने गहना पहनना छोड़ दिया है—यह

बात इतिहास में भी नहो लिखी है ।'

'वही तो—' भद्रा बोली—'वरना बुद्धिमान व्यक्तियों ने क्यों कहा, 'स्त्री बुद्धि प्रलयंकरी' ।'

'अरे बाप रे ! भद्रादी तो शास्त्रों के वचन बोल रही हैं ।'

'बोल रही हूँ जिसमें तुम लोगो की अक्ल ठिकाने लगे । यह मानती हूँ कि स्वर्ण का नशा औरतो को चिरकाल से था । लेकिन इन्सान क्या कभी बुद्धिमान नही होगा ? लड़कियों का यह स्वर्ण का नशा ही चिरकाल से अभागे पुरुषों को स्वर्ण-हिरन के पीछे दौड़ा रहा है । और सर्वनाश की ओर धकेल रहा है—यह क्या कभी महिलाओं की समझ में न आएगा ?'

'समझ तो रही हूँ', तार्किक लड़की बोली—'डर के कारण ही अगर लड़कियों को निराभरण होकर रास्ते पर उतरना पड़े तो इस 'जागृत शक्ति संघ' की जरूरत क्या है ? इस पर शायद तुम कहोगी कि हमारे रास्ते पर निकलते ही जब लुब्ध पुरुषगण हमारी तरफ हाथ बढ़ाते हैं तो रास्ते पर निकलने की जरूरत ही नहीं है ।'

अभी तक भद्रा हल्के मिजाज ही से बातें कर रही थी लेकिन अब गम्भीर होकर बोली—'कुतर्क का कोई उत्तर नही है । फिर भी जैसे बीमारी की दवा निकालनी जरूरी है वैसे ही जरूरी है बीमारी के लिए पहले से प्रोटेक्शन लेने का । अलंकार से अपने शरीर को ढाँक कर सजावटी गुड़िया बनी रहना चाहती हो तो पहनो न काँच, मोती और स्टील । लेकिन यह क्या सही नहीं है कि इन गुड़िया सी लड़कियों के लिए पृथ्वी में श्रद्धा या सम्मान नहो है ? है लोभ और व्यंग । सच कहने को—मैं तो सोच ही नही सकती हूँ कि क्यों लड़कियाँ शैशव-काल से ऊपर उठना नहो चाहती हैं । हमेशा क्यों, बच्चों की तरह रंग-बिरंगी रहना पसन्द करती हैं ?'

'यह है प्रकृति का धर्म ।'

'लता, आज के युग में मनुष्य अब प्रकृति का गुलाम नही रह गया है । मनुष्य की अब एकमात्र साधना है—प्रकृति को जीतने की, अतएव 'प्रकृति धर्म' नामक हास्यकर बात को माना नहीं जा सकता है । मेरे विचार से लड़कियों का यह गुड़िया सा सजने का शौक प्रकृति का एक हास्यकर ख्याल ही है ।'

'ठीक है, कल से हम लोग खाकी कपड़े पहनेंगे—' कह कर लड़कियाँ फिर हँसते-हँसते लौट गई । अतएव काम की बात आगे नही बढ़ी ।

'तुम लोगों से कुछ न होगा—' कह कर भद्रा गुस्सा कर चली गई । तब लड़कियाँ भद्रा की समालोचना करने बैठीं ।

सभी चाहती हैं कि भद्रा एक संघ या समिति का निर्माण कर दे । क्योंकि 'कुछ कर रहे हैं' की चिन्ता के बिना मनुष्य को चैन नही । या गुरुमन्त्र, नही तो

४

सोशल वर्क, कुछ तो चाहिए ही।

इसके अलावा, क्रमशः यह शहर विपत्तिजनक हुआ जा रहा है, लड़कियों का स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करना अब गौरवमय नहीं रह गया है—बहुत से क्षेत्रों में चपत खाकर चपत हजम करके घूमना पड़ रहा है—यह सभी अनुभव कर रहे हैं।

लेकिन, इसीलिये कोई बड़प्पन झाड़ेगा, यह भी सहनीय नहीं। उन्होंने भद्रा को सेक्रेटरी बना लिया है, इसीलिये भद्रा ऐसे अवास्तविक सब निर्देश देना शुरू करेगी और वही सब को मानना पड़ेगा, यह नहीं हो सकता।

इसीलिये भद्रा की अनुपस्थिति में वे एक आवाज से, भद्रा के सारे मत को 'एबसर्ड' घोषित करती हैं।

× × ×

गुस्से से भरी भद्रा बस पर चढ़ी। गई सोमा के यहाँ। सोमा कभी उसकी सहपाठिनी थी। शायद काल गति उस परिचय को धो-पोंछ डालती, क्योंकि सहपाठिनी वे लोग केवल डेढ़ साल ही रही। सोमा ने पिता की मृत्यु होते ही पढ़ना छोड़ दिया था। लेकिन बाद में फिर बड़े भाई की प्रेम की पात्री समझ, भद्रा ने नये सिरे से सोमा को चाहना शुरू किया था। सोमा मृदु, भद्रा तीव्र, सोमा जरा मूर्ख सी, भद्रा प्रखर—फिर भी भद्रा ने सोमा को 'सहेली' समझा था। मन-मिजाज बिगड़ने पर सोमा के पास चली आती है।

उसे देख कर सोमा बहुत खुश हुई।

बोली—'कितने दिनों से तू नहीं आई है—'

भद्रा बोली—'भइया की तरह बन रही हूँ।'

उसके बाद भद्रा तख्त पर आराम से बैठती हुई बोली—

'चाय तैयार कर—बहुत बातें हैं। अच्छा नहीं, चाय बनाने की जरूरत नहीं, बात ही करें।'

'अरे बाबा, चाय बनाने में कितना वक्त लगेगा?' सोमा कह कर चली गई।

भद्रा तख्त पर पाँव चढ़ा, दोनों घुटने मोड़ कर बैठी। उस पर ठोढ़ी रख कर कमरे का दृश्य देखने लगी। गृह-सज्जा पर उम्र की छाप स्पष्ट थी। पहली बार जैसा देख जाती, दुबारा देखने पर और भी ज्यादा जीर्ण लगती चीजें। इन लोगों का अब नया कुछ न होगा। अब तो तीनों प्राणी ऋण चुका रहे हैं।

आश्चर्य है। यही हमारा समाज है। एक मनुष्य के मरते ही सारी गृहस्थी मर जाती है। मानसिक शोक दुःख की बात छोड़ भी दी जाए, लेकिन अगर सोमा की माँ उपार्जन करती होती, सोमा अगर पिता के मरते ही पढ़ाई न छोड़ कर बैठ न जाती तो गृहस्थी की ऐसी दशा न होती!

लेकिन इनका दृष्टिकोण ही अलग है।

ये जीने की बात ही नही सोचते हैं, मरने की बात ही जानते हैं। मृत्यु को 'जीवन' से अधिक प्रधानता देना स्वस्थ लक्षण नही है, इधर ध्यान ही नहीं देते हैं।

सोमा की दादी की बात छोड़ दो।

सोमा की माँ पति की मृत्यु के साथ-साथ लगभग 'सहमरण' किए बैठी है। उन्होंने समझ लिया है—उनके लिए हँसना अपराध है, किसी से बातचीत करना अपराध है, मनुष्य के सामने निकलना अपराध है। सोमा को भी इसकी छूत लगी है। सोमा उदास रहती है। इसीलिये सोमा अपने दादाजी के वक्त की इस नोना लगी दीवाल पर दादी के हाथ की कढ़ी कार्पेट की कढ़ाई और जितने मरे मनुष्यों की पीली पड़ती तस्वीरों को लाइन से लटका कर, इसी कमरे की खिड़की के पास बैठी प्रियतम की प्रतीक्षा में दिन गुजार रही है। इसके मतलब अपने लिए एक समाधि रच रखी है उसने।

रविश !

किस बात की प्रतीक्षा ! किसकी प्रतीक्षा ? छीन कर नही ला सकती है ? गले में फन्दा डाल कर खींच कर नही ला सकती है ? इस तरह की जड़मूर्ति सी पिनपिनी लड़कियों की जल्दी शादी करके वर और घर जुटा देना ही उचित होता है।

दो प्याले चाय लेकर सोमा कमरे में आई। बोली—'अपने ही आप बड़-बड़ा कर क्या कह रही है ?'

'तेरा सिर चबा रही हूँ।'

'अचानक मेरा सिर किस गुण से इतना कीमती हो उठा है ?'

'मेरे महामहिम भाई के गुण से....।....वह भाग्यहीन तेरे साथ इतना दुर्व्यवहार कर रहा है और तू....।'

सोमा आश्चर्य से बोली—'अचानक तेरे भइया मेरे साथ क्यों दुर्व्यवहार करने आएँगे ?'

'नखरे रहने दे। सड़ी एक नौकरी क्या मिली है, गधे का सिर ही चकरा गया है। तब से वह दुष्ट फिर इधर नहीं आया है न ?'

'अरे, यह क्या ?'

सोमा जैसे आसमान से गिरी—'कल शाम को ही तो आए थे।'

कल की शाम अन्य अनेक शामों से फर्क थी और एक दैवी घटना थी—यह छुपा गई।

'कल भइया यहीं आया था ?'

भद्रा अँगूठा गाल से छुला कर बोली—'लो, तब तो हो गया !'

'क्यों ? क्या हुआ ?'

'हुआ है कुछ।' भद्रा बोली—'वह एक लम्बी कहानी है। संक्षेप में, हमलोगों ने शक किया था कि कल शाम को ऑफिस से लौटते वक्त वह कलकत्ते के बाहर चला गया था। अब तो देख रही हूँ....कब आया था ?'

'यही कोई आठ बजे। बोला, ऑफिस से लौट कर मोहल्ले के दोस्तों के चक्कर में पड़ चाय-वाय पीकर ही अचानक इधर चला आया था।'

'हूँ। तब तो उस आदमी पर बिना कसूर के शक किया गया है।'

सोमा बोली—'मामला क्या है, बता तो ?'

'वह तुम छोटी हो, नहीं समझोगी। सिर्फ इतना जान लो, जैसा सोचा था कि बिगड़ चुका है, उतना बिगड़ा नहीं है, खैर, मैं दूसरे काम से आई थी।' कह कर भद्रा ने संक्षेप में अपने जागृत संघ की परिकल्पना, आदर्श पद्धति वगैरह बताते हुए कहा—'उन लोगों के साथ लड़ कर चली आई हूँ। अब कहना चाहती हूँ कि अपने पड़ोस में तू ऐसा आर्गेनाइज कर न? मैं पीछे हूँ। यह जरूरी है, समझी ? लड़कियाँ क्यों चिरकाल तक सब तरफ से मार खाएँ—यही क्या ठीक भी है ?'

लेकिन सोमा बहुत उत्साहित न हो सकी। बोली—'मुझसे यह सब नहीं होगा बाबा, वह तेरे लिए ही संभव है।'

'क्यों, तुम्हारे द्वारा संभव क्यों नहीं है ?'

'अरे बाबा, पड़ोस में दर-दर घूम कर उन्हें हितोपकथा समझाना कोई आसान बात नहीं। सोचेंगे—जाने इनका मतलब क्या है ?'

'यह बात सही है। मतलब के ही पीछे तो देश चक्कर काट रहा है। बिना मतलब कुछ किया जा रहा है इस पर कोई कहीं विश्वास नहीं करता है ?' भद्रा जोर डाल कर कहती है—'फिर भी विश्वास करवाना पड़ेगा। निन्दा, बुराई, विरोध, समालोचना, सभी कुछ सिर पर झेलना पड़ेगा। निष्ठा का पुरस्कार एक न एक दिन मिलेगा ही।'

'निष्ठा का पुरस्कार' दिखाने के लिए टाइम तो मिले ? कोई सुनेगा ही नहीं।'

'फिर भी अविरल कानों के पास धिनधिनाना पड़ेगा, यही पॅलीसी है। मनुष्य की 'भलाई' करने जाने का रास्ता कभी भी कंटकहीन नहीं है सोमा। कारण असल में मनुष्य 'अच्छा' होना नहीं चाहता है। असल में वह चाहता है हर वक्त पिनपिनाना, 'गया—मरा' करते रहना चाहता है। हाहाकार करना, हताश रहना चाहता है। मन को अभियोग और अप्रसन्नता से भरपूर रखना चाहता है। इसी में उसको खुशी है, इसी से वह परितृप्त है।....झट से कुछ 'अच्छा' हो गया तो, यह पिनपिन करने का दावा घट नहीं जाएगा ?'

'बाबा रे, इतना सब तू सोच लेती है ?'

सोमा हँसने लगती है।

भद्रा बोली—'सोचना नही पड़ता है, रात दिन आँखों के सामने दिखाई पड़ रहा है। इन बेवकूफ लड़कियों को ही बात लें—जिनकी बात अभी तक कर रही थी, वे ही दिन-रात कम्प्लेन करती हैं कि इन असभ्य बन्दरों की वजह से ट्राम-बस पर चढ़ना मुश्किल हो गया है, अकेले जनमानवहीन सड़क पर चलने से शरीर में झुर-झुरी चढती है, ऑफिस वगैरह में काम करने जाओ तो सम्मान बचा कर पदोन्नति की आशा करनी नही चाहिए—इत्यादि-इत्यादि........लेकिन कह कर तो देखो इन मूर्ख लड़कियों को —'तुम लोग अपना यह औरतपना जरा छोड़ो, जरा भूलने की कोशिश करो कि मैं लड़की हूँ, मैं लड़की हूँ, मेरी तरफ सारा पुरुष समाज देख रहा है और पृथ्वी पर जितने भी बन्दर हैं सब मुझे अपना लक्ष्य बना कर दौड़े आ रहे हैं।'—यह बातें सुनेंगी ? नही सुनेंगी। सारा ठाट बनाए रख कर, पुरुष की आँखों के सामने विज्ञप्ति के लिए जितने प्रकार के छल-बल हैं, उनका प्रयोग करके, ये लोग चाहती हैं कि सूर्य तक का प्रकाश उन्हें स्पर्श न करे। साथ में छुरा रखने की बात उठते ही कहती क्या हैं कि उसका केस ऐसे शौकीन चेहरे का तैयार कराना होगा कि कोई समझ न सके कि इसमें अस्त्र है।—तुम्ही बताओ इनकी क्या दशा होगी ?'

सोमा हँसने लगती—'ऐसा कहा उन लोगो ने ? तब तुमने क्या कहा ?'

'क्या कहती ? बोली—'तुम लोगो से कुछ नही होगा।' लेकिन मुश्किल तो ये है कि बिल्कुल छोड़ते भी नही बनता है।'

'जानती हूँ।' भद्रा बोली, 'जाने दो। बात ये है कि तुझे शादी की जरूरत है। और बहुत जल्दी होनी चाहिए। अतएव पार्थो बाबू की रास जरा खींचो।'

सोमा का मुँह लाल हुआ।

सोमा ने जरा तीखे गले से कहा—'क्यों, अचानक मेरी इतनी जल्दी शादी की क्या जरूरत आ गई है ?'

'और क्यों—अपने इस सीलन भरे वातावरण में रह कर दिनों-दिन सीलती जा रही है, इसीलिए। घर के तीन प्राणी में से दो अगर विधवा हों, तो तीसरे के मन की दशा भी क्रमशः विधवा-विधवा सी हो जाती है। शायद अचानक सुनूँगी कि तू भी निरामिष खाना खा रही है।'

सोमा मन ही मन हँसी।

भद्रा लोगों की हालत पार्थो के नौकरी लगने से पहले तक कुछ अच्छी न थी, फिर भी भद्रा लोगो का परिवार माँ-पिता-भाई से भरपूर एक घर था। मानों फ्रेम में जड़ा एक ग्रुप फोटो हो।....इसीलिए भद्रा कल्पना को मिलावट करते हुए कह सकती है कि 'किसी दिन अचानक सुनूँगी तू भी निरामिष....'

क्योंकि भद्रा सोच ही नही सकती है कि हर दिन सोमा यही ...
अपने लिए अलहदा इन्तजाम की बात सोमा सोच भी नही सकती है

सोमा कहती है, उसे मछली में महक लगती है।

माँ कभी-कभी कहतीं—'कहाँ, पहले तो महक नहीं लगती थी ?' कहा था—'रोज-रोज निरामिष खाने से तेरा स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा।'

सोमा ने कहा—'पहले नहीं लगता था, अब लगता है।'....कहा—'स्वास्थ्य बिगड़ेगा न हाथी। बहुतेरे अबंगाली मछली गोश्त नहीं खाते हैं, उनका स्वास्थ्य बिगड़ रहा है।'

युक्ति न मानने लायक नहीं थी। इसके अलावा सोमा के मत को मानने में गृहस्थी की ही सुविधा है। दो चौके का झंझट नहीं, और रोज बाजार जाने का भी झमेला नहीं है। आलू परवल जैसी तरकारी, एक दिन मँगा कर पाँच दिन चलाई जा सकती है। अतएव सोमा की युक्ति ही मान्य हुई।

सिर्फ माँ ही कभी-कभी करुण स्वरों में कहती—'हम लोगों के साथ खा-खाकर तेरी दशा खराब हुई। शादी होकर ससुराल चली जाती तो मैं भी छुट्टी पाती, तू भी।'

या फिर कभी कहती—'अलग से एक अण्डा उबाल कर भी तो खा सकती है।'

कारण—उसमें न सोमा को कोई उत्साह है न माँ को। माँ ने जैसे समझ लिया है कि किसी तरह से उत्साही होकर तैयारी करना उनके लिए अशोभनीय है। इसीलिए माँ कहती—'खा सकती है।'

लेकिन सोमा ने भद्रा से यह नहीं बताया। सोमा सिर्फ जरा सा मुस्कुराई।

फिर सोमा बोली—'तेरा भइया मुझी को अपने गले में लटकाएगा ऐसा क्यों समझ बैठी है ?'

'समझ बैठने का क्या कोई कारण नहीं है ?'

'मुझे तो नहीं लगता।'

भद्रा भौंहें सिकोड़ कर कहती—'सचमुच कह रही है ?'

'खामोख्वाह झूठ बोलूँगी ही क्यों ?' कह कर सोमा खामोख्वाह ही चाय के दोनों प्याले उठा कर अन्दर रखने चली गई। भद्रा मन ही मन बोली—'हूँ! तो मान-अभिमान चल रहा है। मुझे तो डर ही लग रहा था। लगता है भइया का नम्बर है मान भंग करने का।'

जरा ही देर में सोमा लौट आई।

पूछा—'माँ से भेंट करेगी ?'

'नहीं रे नहीं', भद्रा ने कातर कण्ठ से कहा—'तेरी माँ तो देखते ही आँसू बहाने बैठ जाएंगी।'

शायद सोमा आहत हुई। उदास स्वरों में बोली—'और करने को ही क्या है बता ?'

भद्रा कुछ नहीं बोली ।

क्योंकि वह सोमा की माँ है ।

लेकिन मन्तव्य करना अच्छा नहीं होगा, वरना कहती—'करने को तो सोमा बहुत कुछ है ! लेकिन अगर शोक को दिल बहलाने का साधन बना कर पाल रखने का ही उद्देश्य है तो फिर करने को और है ही क्या ?'

भद्रा ने सोचा था भाई की उदासीनता की बात उठा कर सोमा के सामने का आज निपटारा करेगी, लेकिन सोमा का ठंडा-सा व्यवहार देख कर यह संकल्प बरफ पर रखी चीज की तरह फिसल कर गिर गया ।

भद्रा ने सोचा, मरने दो, इनकी बात ये लोग समझें । हर वक्त सबके सामने मैं मैं ही क्यों अपना दायित्व सोच कर परेशान रहूँ ?

बातें उसके बाद जमी नहीं ।

भद्रा उठने को हो ही रही थी कि अचानक बाहर के दरवाजे की कुण्डी किसी ने खूब जोरों से हिलाई । स्पष्ट था किसी असहिष्णु हाथों का काम है यह ।

'कौन असभ्यों की तरह कुण्डी बजा रहा है रे ?' कह कर भद्रा ही उठने जा रही थी कि सोमा बोली—'तू रहने दे, मैं देख रही हूँ ।'

'पहले देख लेना डाकू-वाकू न हो !'

'डाकू ?' सोमा जाते-जाते हँसी—'सो आ भी सकते हैं । शायद जान गए हैं कि तू यहाँ आई है ।'

दूसरे ही क्षण सोमा का जरा उल्लसित स्वर सुनाई पड़ा—'ओ माँ ! आप ? क्या मुसीबत है ? और हम लोग सोच बैठे कोई डाकू-वाकू—'

भद्रा ने झाँका ।

और साथ ही साथ विस्मय से जैसे पत्थर बन गई ।

उसके बाद ही दोनों कमरे में घुस आए । कमरे में पाँव रखते ही टूटू चिल्लाया, 'अरे, तुम यहाँ ?'

भद्रा हिली-डुली नहीं । जैसे बैठी थी वैसे ही बैठे-बैठे बोली—'यही बात मैं भी कह सकती थी, लेकिन कहा नहीं । तुम्हारा इस घर में आना-जाना है; जानती न थी ।'

टूटू ऊँची आवाज़ में बोला—'मेरी गतिविधि के सारे चार्ट तुम्हारे आगे पेश करने पड़ेंगे, निश्चय ही ऐसा कोई 'बॉण्ड' साइन नहीं किया है ।'

भद्रा जोरों से हँस उठी । फिर बोली—'कौन किस वक्त कहाँ 'बॉण्ड' लिख कर बैठा रहता है, यह वह स्वयं भी नहीं जानता है ।'

'जैसे तुम्हारा भाई । किस मौके में संजय घोष के पास बॉण्ड लिख आया है, नहीं जानता है ।'

भद्रा कहने जा रही थी—'भइया कल यहाँ आया था', लेकिन बोली नहीं ।

भद्रा को लगा, कैंफियत की तरह लगेगा, अथवा कसूर सँभालने की तरह।

अतएव टूटू फिर बोला—'उसका सत्यानाश हो गया है।'

उसके बाद ही बोला—'दिवेन्दु नहीं आया है?' कहा सोमा की तरफ देख कर।

सोमा ने सिर्फ सिर हिलाया।

'क्या किया बुद्ध ने....' टूटू धप् से तख्त पर बैठते हुए बोला—'मुझसे कहा था, शाम को यहीं आएगा....'

भद्रा के होठों के कोने पर तिरछी हँसी झलकी। बोली—'बात बनाने की क्या जरूरत है?'

'बात?'

'यही तो लग रहा है।'

'कुटिलों को बहुत कुछ लगता है,' टूटू ने जोर डालते हुए कहा, 'जरूरी एक मामले पर मुझे उसकी सख्त जरूरत है।'

'ओ....ह।' भद्रा ने निरीह-सी आवाज में कहा—'दिवेन्दु ने क्या तुम्हें अमीर बनने का कोई आसान रास्ता दिखाया है?'

'दिवेन्दु? उसे उस रास्ते का क्या पता? रखता तो खुद ही चुपचाप पहले चला जाता। रास्ते का आविष्कार मैंने ही किया है। वह सिर्फ—ए डेवलपमेन्ट के चीफ इन्जीनियर है?'

'क्या पता? माँ तो अपने पिता के घर अनेकों बड़े-बड़े आदमियों की बातें करती है। किन्तु आँख से कभी किसी को देखा नहीं है।'

'देखो, बड़े आदमी रिश्तेदार हों तो कभी भी अपने गरीबखाने में उन्हें नहीं देख पाओगी, उनके पास ही दौड़-दौड़ कर जाना पड़ता है।'

'मुझे नहीं पड़ी है।'

'फिर तो बड़े आदमी रिश्तेदार का मुंह देखने का सुख नहीं मिल पाएगा। खैर, मेरा काम जरूरी है, दिवेन्दु को पकड़ कर मैं अभी उन्हीं इन्जीनियर साहब के पास जाऊँगा जिससे गवर्नमेन्ट का कुछ काम दिला सकें।'

'काम? माने नौकरी?'

'अरे दुर-दुर! नौकरी ले कर क्या धूल चाटूंगा? ठेकेदारी का काम....साधु बंगला में जिसे कहते हैं—कन्ट्राक्टरी। बड़ा मजेदार व्यवसाय है। रुपए पर तीन रुपए का फायदा। एक बार घुसने के लिए कुछ लकड़ी-कोयला चाहिए, उसके बाद अपनी चाल से फटाफट बढ़ जाऊँगा।'

भद्रा मुँह दबा कर हँसी—'इसके मतलब चोरी करोगे।'

'चोरी?'

टूटू हताश होकर बोला—'कहाँ हो? जगत का सबसे महत्त्वपूर्ण और पवित्र-

तम पेशा ही तो है दूसरे का धन-हरण । माने जानती हो ? या बंगला भाषा में कच्ची हो ?....जाने दो, लग रहा है अभी तुम्हारा चाय-पर्व बाकी है। सोमा, अतएव इस अभागे को भी एक कप....'

'हम लोग चाय पी चुके हैं....' भद्रा जोर आवाज से बोली—'जूठे प्याले निर्वासित हो चुके है, अब सोमा चाय तैयार करने नही जा सकेगी।'

'नही नही। छि', यह क्या कह रही हो ?' सोमा जल्दी से उठ कर जाना चाहती है। भद्रा उसकी साड़ी का कोना पकड़ लेती है—'ए, खबरदार ! अभी नहीं। अगर इसकी बनाई बात सच हो, दिवेन्दु आवे, तब बनेगी चाय।'

टूटू तख्त पर लम्बी तान कर लेट गया। रोशनी की आड़ करने के लिए उसने आँखों पर हाथ रखते हुए कहा—'अच्छा, ठीक है। यह अपमान याद रखूंगा। और यह भी देखूंगा, जब क़ीमती मोटर पर चढ़ कर आऊँगा, तब उठा रखे फूलदार टी-सेट को निकाल कर चाय पिलाती हो या नहीं।'

सोमा भद्रा की मुट्ठी से साड़ी का छोर छुड़ा कर चली गई। कहती गई—'ए भद्रा, पागलपन क्यों कर रही है ?'

सोमा के चले जाने पर लेटे-लेटे पाँव नचाते हुए टूटू बोला—'सोमा के प्रश्न का उत्तर मैं दे सकता हूँ—जेलेसी के कारण इन्सान भयंकर रूप से पागल हो सकता है।'

'ओ....ह जेलेसी ! कितनी बड़ी निधि है न कि कोई तुड़ाए ले रहा है, सोच कर जेलेसी से पागल हो जाऊँगी।'

'अभी निधि नही लग रहा हूँ, लेकिन जब अपने लिए एक, अपनी पत्नी के लिए अलग से एक कार रखने की क्षमता होगी, जब पड़ोस के लड़के मुझे अपने सार्वजनिक पूजा-पण्डाल मे एक बार 'चरण रज' देने के लिए गले में चादर डाल कर कहने आएँगे और शहर के कितने जाने-माने लोगों की तालिका में मौका पाते ही मेरा नाम घुस जाएगा....तब तो निधि सोचोगी।'

'ठीक है। तब बैठे-बैठे अपना माथा ठोकूँगी और तुम देख कर हँसना।'

'मैं देख कर हँसूंगा ?'

टूटू झटके से उठ बैठा। भद्रा के दोनों कन्धे पकड़ कर जोर से हिलाते हुए बोला—'*तुम माथा ठोकोगी तो मैं किसके लिए दूसरी गाड़ी रखूंगा बताओ तो ?*'

भद्रा उसके मुँह की तरफ आँख उठा कर देखती है। भद्रा के चेहरे पर एक रहस्यमयी हँसी बिखर उठी। खूब कोमल स्वर में भद्रा बोली—'किसी एक हिरनी के लिए।'

'भद्रा, मेरा मिजाज मत बिगाड़ो', टूटू उसे और जोर से एक झटका देता है—'गुस्से के मारे कुछ भी कर सकता हूँ।'

'रहने दो, खूब वीरता दिखाई है।'

भद्रा अपने को छुड़ा लेती है।

बोली—'सोमा आ जाएगी तो सोचेगी 'कुछ भी करने के लिए' उसे यहाँ से हटाया है। चाय बहाना है।'

'इस सामान्य चिन्ता के सुख से उसको वंचित करके क्या फायदा होगा ?'

'सोमा के अलावा भी इस घर में लोग हैं।'

'वे तो मृत हैं।'

भद्रा एक बार कमरे की छत की तरफ देखती है, फिर साड़ी के आँचल से मुँह पोंछ लेती है। पंखा नहीं है, एक टेबिल फैन स्टूल पर रखा जरूर है, पर लग रहा है अचल है। अर्थात् वह भी मृत।

'इस घर में आने पर मुझे भी यही लगता है—' भद्रा कहती है—'जैसे मृतकों का देश हो। यहीं पड़ी है बेचारी सोमा। ज्यादा दिन तक इस तरह से रही तो वह भी मर जाएगी।'

'पार्थो को पकड़ कर चाबुक लगाया जाए। उसका तो बहुत बड़े आदमी बनने का जीवन मरण का प्रण नहीं है ? जो कुछ मिला है, उसी में सुख से रह सकता है। फिर किस बात की देर है ?'

पार्थो कल आया था, इसीलिए भद्रा का मन निश्चिन्त था। भद्रा इसीलिए कहती है—'उनकी बात वह जानें। लेकिन बहुत बड़ा आदमी बने बगैर सचमुच सुखी नहीं हुआ जा सकता है, तुम यही मानते हो ?'

'जरूर ! दोनों हाथों से पैसा उड़ाऊँगा, दोनों पैरों से कुचलूँगा—यह न हुआ तो कोई सुख हुआ ?'

'अगर ऐसा न हुआ ?'

'नहीं हुआ माने ? होना ही होगा। टूटू चौधरी शब्द का मतलब जानती हो ? इसके मतलब हुए—एक दुर्जय प्रतिज्ञा, एक प्रबल संकल्प।'

'इतना ज्यादा मत बोलो। भाग्य में क्या लिखा है कौन जानता है ?'

'भाग्य ? भाग्य माने क्या है ? 'भाग्य' शब्द तो क्षमताहीनों के लिए सान्त्वना है। भाग्य तो अपने हाथों में है।'

ये बातें भद्रा को बचकानी लगती हैं—फिर भी सुनने में अच्छी लगीं। यह जोर, यह प्रबलता, यह तुच्छ समझने योग्य नहीं।

फिर भी भद्रा मन ही मन हँसी।

'चुप हो गई जो तुम ?'

टूटू बोला।

शरारती हँसी हँस कर भद्रा बोली—'सब कुछ क्या अपने हाथों में है ? मान लो जिस पत्नी की कल्पना कर तुम मन ही मन मोटर खरीद रहे हो उसने तुमसे शादी ही न की....।'

क्षण भर को टूटू ने उसके चेहरे को देखा। न जाने क्या देखा, उसके बाद ही निश्चिन्त होकर बोला—'न करने से हो छूट जाएगी ? स्वेच्छा से नहीं आएगी तो हरण कर लाऊँगा।'

'हरण ?'

'और नहीं तो क्या ? उससे अच्छी चीज और क्या हो सकती है ?'

सोमा फिर दो प्याली चाय लेकर अन्दर आई। बोली—'किससे अच्छी और चीज नहीं है ?'

टूटू ने हाथ बढ़ा कर दोनों प्याले ही ले लिए। बोला—'चाय की तरह। दोनों प्याले पीऊँगा।'

'रुकिए, जरा तले चिउड़े ले आऊँ', कह कर सोमा फिर अन्दर च ी गई।

भद्रा ने दबी आवाज में कहा—'जैसा देख रही हूँ, आखिर तक तुम मुझको भी रखोगे, सन्देह है। हो सकता है खा ही जाओ।'

'मैं, तुमको ?'

टूटू गले की आवाज धीमी करने के झंझट में पड़े बगैर ही बोला—'मेरे दोस्त तो ठीक इसके विपरीत बोलते हैं। कहते हैं—शेरनी के चक्कर में जब एक बार पड़े हो, तो वह तेरी हड्डी खाएगी, मांस खाएगी, फिर चमड़े की डुगडुगी बजाती फिरेगी।'

'यह बात कही है ? कौन हैं ये बदमाश लोग ?'

'नाम बता कर मैं उनकी मृत्यु का कारण नहीं बनने का। सुना है तुम लोगों ने 'मुजाली क्लब' खोला है। हर समय मुजाली साथ रहेगी।'

'ओह, यह भी सुन चुके हो ?' भद्रा सन्देह भरे स्वरों में बोली—'ये सब खबरें तुम्हें सप्लाई किसने की हैं ?'

'कितने ही रिपोर्टर हैं।'

'इसके मतलब अनेक लड़कियों के साथ चरते फिर रहे हो।'

'यह बात बिल्कुल झूठी भी नहीं कही जा सकती है। बड़े आदमी में जिन गुणों की जरूरत है उसी का अभ्यास कर रहा हूँ।'

'बड़ा आदमी बने बगैर ही।'

'वही तो अच्छा है। बन जाऊँगा तब अभ्यास करने में वक्त लगेगा।....मेरे उन दोस्तों ने और क्या-क्या कहा है जानती हो ? कहा है, तुम्हारी गृहस्थी में वे लोग घर की चौखट तक पार न करेंगे।'

'यही ठीक कहा है। मेरा पहला काम होगा इन दोस्तों को झाड़ू से बटोर कर निकाल बाहर करना। दोस्तों की तरह दुश्मन नहीं हैं इस दुनिया में, यह तत्त्व जान लो।'

'सभी तत्त्व-कथा तुमसे ही सीखनी पड़ेगी ?'

'हजार बार, लाख बार।'

सोमा आई।

बोली—'मामा आ रहे हैं ?'

टूटू उछल पड़ा—'कहाँ ?'

सोमा बोली—'मैंने भण्डार-गृह की खिड़की से देखा है, बगल की गली से आ रहे हैं।'

गम्भीर होकर टूटू बोला—'अब तो विश्वास हुआ, मेरी कहानी बनाई हुई नहीं है।'

'सम्पूर्ण रूप से संयोग भी हो सकता है।' भद्रा अवहेलनापूर्वक बोली—'खैर, तुम लोग तो बिजनेस टॉक करने में मस्त रहोगे—मैं चली।'

'इतनी रात गए अकेली जाओगी ? साथ में भुजाली है ?'

टूटू की व्यंगोक्ति पर सोमा हँस उठी—'वाह, सभी को यह खबर मिल चुकी है।'

'नहीं, किसी को भी कोई खबर नहीं मालूम है', कहते हुए दरवाजा ढकेल कर दिवेन्दु अन्दर घुसा—'अभी सुना, मनुष्य ने चाँद पर पदार्पण किया है।'

'चूल्हे में जाए चाँद, तेरे पिताजी के उस फुफेरे भाई की क्या खबर है ? फिलहाल उनका दर्शन ही मेरे लिए हाथों में चाँद पाने के तुल्य है।'

'अभी चल। खूब हाथ-पाँव जोड़ कर कह आया हूँ।'

'खूब क्या खुशामदपसन्द हैं ?'

'थोड़ा तो है ही।'

'ठीक है। अभी खूब खुशामद करूँगा। पर बाद में न पहचानूँगा—यह अभी से कहे दे रहा हूँ।'

× × ×

यही बात पार्थो ने भी सोची थी।

जब संजय काकू के 'नौकरी पकड़े हुए' हाथ को पकड़ना पड़ा था, तब सोचा था। अभी तो पकड़ूँ, बाद में न पहचानने पर भी काम चल जाएगा। 'बॉस होने तो जा नहीं रहे हैं।' लेकिन यही बाद की बात तो पहले ही हो गई। फिर भी आज नए सिरे से संकल्प किया था—'आज से कट ऑफ।' और जितनी जल्दी हो सके सोमा से शादी कर के....

परिचित हार्न के बज उठते ही, सिर से पाँव तक बिजली का झटका सा लगा। पार्थो जल्दी से शीशे के सामने जाने लगा तो किसी चीज से टकरा गया और टाई का फन्दा कसने लगा तो गाँठ लग गई।

शुरू-शुरू में पार्थो बाँधना ही नहीं चाहता था। संजय काकू ने ही निर्देश जारी किया था—'नहीं नहीं, टाई बाँधो। इससे पर्सनैलिटी उभरती है, अधिनस्थ

लोग सम्मान देते हैं।'

उसके बाद ही तीन टाई उपहार स्वरूप दे बैठे थे।

उस टाई को न बांधने से अभद्रता लगती है। अतएव पार्थो को टाई बांधनी पड़ी और सिर झुकाए, आँखें चुराए हुए पड़ोस की गली से निकला था।

दोस्तों ने सुनाते हुए कहा था—'राजा का दामाद दरबार में जा रहा है रे।'

पार्थो उनसे अलग होता जा रहा था। फिर उनके साथ जुड़ने का कल संकल्प किया है।

लेकिन हार्न तो बजता ही जा रहा है।

शुरू में रुक-रुक कर, उसके बाद असहिष्णुता की भूमिका—इधर पार्थो के गले में फन्दा कस गया था। खींचा-तानी में उल्टा ही असर हुआ था। पार्थो का चेहरा लाल होने लगा था उसका, तभी पाउडर लगा शरीर, बनियान के नीचे भीगने लगा।

पार्थो की माँ हाँफते-हाँफते दुमंजिले पर चढ़ आई। बोली—'पार्थो, क्या हुआ?'

इससे ज्यादा न कह सकी, भद्र महिला बहुत जोरों से दौड़ती आई थी।

लेकिन उनके न कह सकने पर भी कहने में कोई त्रुटि न रही। पार्थो के पिताजी तब तक नीचे से तीखी आवाज में चिल्लाए—'पार्थो, पार्थो, संजय जल्दी कर रहा है। तुम्हें हुआ क्या है? ऑफिस का वक्त है, वह कब तक खड़ा रहेगा?'

पार्थो कह न सका—'रुकने की जरूरत नहीं है, उन्हें जाने के लिए कहिए। शहर में ट्राम-बस की कमी नहीं है।'

इसी बात का रिहर्सल पार्थो सुबह से कर रहा है।

पार्थो अपनी माँ के पास हिचकता हुआ बढ़ गया—'देखो तो, तुम ये गाँठ खोल सकती हो या नहीं, अचानक न जाने कैसे कस गई है!'

पार्थो की माँ ने एक मिनट में खोल दिया। खोल देकर ही कहा—'अच्छा तू आ, मैं जाकर बताती हूँ।'

पार्थो जानता है, माँ घर की गली पार कर मोड़ पर जा गाड़ी से सट कर खड़ी होंगी, फिर नखरीली विह्वल दृष्टि से देखती हुई कहेंगी—'देखो, तुम्हीं लोग, देखो कैसा गुणों का खान है मेरा बेटा, जिसे लेकर मैं रहती हूँ। फिर भी तो गृहस्थी का एक तिनका नहीं तोड़ता है।'

कहेंगी, और भी बहुत सारी बातें नखरीले स्वरों में कहना चाहेंगी, जब तक पार्थो नहीं उतरेगा। इसके मतलब हैं कि उस आदमी को नाराज होने का मौका नहीं देंगी।

पार्थो माँ का यह नखरीलापन फूटी आँखों नहीं देख सकता है, खासतौर से इस संजय घोष के सामने। देखते ही सर गरम हो जाता है पार्थो का। लेकिन

आज माँ के दौड़ कर निकल जाने ने, जैसे पार्थो के चित्त में शान्ति का प्रलेप कर दिया।

चलो, कुछ देर तक माँ मैनेज कर लेंगी।

लगता है भद्रा घर पर नहीं है।

न रहना ही मंगलकारी है।

रहने पर जरूर ही इस फन्दे लगने की बात पर कुछ न कुछ कहती। दुर! इतनी देर हो जाने का कोई कारण न था....बेकार ही में....।

बाकी काम खत्म कर पार्थो फटाफट उतर गया।

देखा, माँ मोटर से सटी खड़ी हैं। माँ की सिर्फ पीठ दीख रही है, मुख नहीं। संजय घोष का मुँह दिखाई पड़ रहा है....हँसी से उज्ज्वल।

पसीने के साथ बुखार उतर गया।

पार्थो के सीने पर से पत्थर हट गया।

माँ हट आईं, पार्थो गाड़ी में चढ़ बैठा।

माँ नखरे से बोलीं—'आलसी राम को खूब अच्छी तरह से डाँट लगाओ तो।'

इस वक्त यह नखरे पार्थो को बुरे नहीं लगे बल्कि माँ ने परिस्थिति हल्की बना रखी है, इसके लिए कृतज्ञ सा हुआ।

संजय काकू बोले—'ओ बालम, जानते तो हो कि सुबह के एक मिनट की बरबादी, सारे दिन को बिगाड़ देने की क्षमता रखता है।'

पार्थो ने सिर झुका लिया।

ऑफिस से लौटते वक्त संजय काकू बोले—'ए पार्थो, आज तुम्हें एक बार हमारे घर चलना पड़ेगा। इसीलिए सीधे वहीं चल रहे हैं। तुम्हारी चाची जी ने न जाने कौन सी बड़ी-बड़ी मिठाई बनाई है, तुम्हें खिलाए बगैर शान्त न होंगी। मुझ पर हुकुम हुआ है, तुम्हें पकड़ कर ले जाना होगा।'

कल पार्थो ने सोचा था, आज सोमा के लिए कुछ उपहार ले जाएगा और सोमा की दादी के लिए फल। पार्थो निराश हुआ। पार्थो ने धीरे से एक श्वास छोड़ी।

पार्थो अवाक् सा हुआ।

इससे पहले, बीच-बीच में, छुट्टी के दिनों में संजय काकू के यहाँ पार्थो दावत खा चुका था। दोपहर को खाना खाने के बाद, संजय काकू की लड़की के निर्देश पर बैठे-बैठे, रेकार्ड चेन्जर पर गाना सुनना पड़ा है या टेप रेकार्डर पर बातें टेप करके मजा करना पड़ा है—नहीं तो उसके साथ कैरम खेलना पड़ा है। उसके बाद शाम को आइसक्रीम अथवा चाय पी कर ही छुट्टी मिली है। शराफत दिखा कर इन लोगों ने भद्रा की भी दावत की है, लेकिन भद्रा ने ही चरम अभद्रता न दिखा कर, बहाना बना दिया है। उसके बाद भद्रता का सारा उत्तरदायित्व पार्थो के

कन्धे पर जा पड़ता है।

छोड़ो उस बात को, इतनी बार आने-जाने पर भी चाची जी के स्नेहसागर का कोई विशेष परिचय मिला है, ऐसा पार्थो याद न कर सका। उस पर वह काकू पर हुकुम जारी कर सकती हैं—यह भी विश्वास न कर सका। ज्यादातर शासन-भार तो काकू की पुत्री पुरबी पर है और बाकी घोष साहब पर। वह महिला तो लगती है जैसे पिता-कन्या की गृहस्थी में आश्रिता कोई हो।

कम से कम पार्थो को यही लगता है।

इधर यह सुनने में आ रहा है कि बड़ी-बड़ी मिठाई बना कर पार्थो को खिलाए बगैर उन्हें शान्ति नहीं मिल रही है। इसी वजह से पति पर हुकुम जारी किया है कि पार्थो को पकड़ लाएँ। इस स्नेहमरी पुकार को तुच्छ करके क्या कहा जा सकता है, 'नहीं, आज मुझे कुछ काम है, आपके यहाँ जाने की सुविधा न होगी।'

पार्थो ने घोष साहब का ऑफिस तो देखा है, उनकी महिमा भी देखी है और अब वही तीक्ष्ण नाक दृढ़ चिबुक और प्रायः मेदहीन मुँह के पास का हिस्सा भी देख रहा है। उस मुँह पर कुछ कहा जा सकता है क्या?

तीक्ष्णता और दृढ़ता की प्रतिमूर्ति वह चेहरा जैसे आदेश—वाणी उच्चारित करने के लिए ही सृष्टि द्वारा रचा गया है। इसके आदेश का उल्लंघन करना कठिन है।

अच्छा, पहले पार्थो इनके आदेशों की परवाह नहीं करता था न?

नहीं, बिल्कुल जता कर मानता न था, ऐसा नहीं है, बल्कि सामना नहीं करता था, टालता था और इसीलिये शायद पार्थो ने कभी इस अलंघनीय चेहरे को ठीक से देखा न था। उसी चेहरे के अधिकारी के आगे पार्थो की माँ ऐसे नखरे कैसे कर लेती हैं, पार्थो सोच नहीं पाता है।

घर पर साहब कुछ ढीले-ढाले रहते। सूट बदल कर, एक आधे इंच की टेप बनियाइन और एक सिल्क की लुंगी पहन कर आ बैठे। उदार आवाज़ में पुकार उठे—'कहाँ रे रुबी—अपनी माँ से पूछ कहाँ है वह मिठाई-विठाई। पार्थो को पकड़ लाया हूँ।'

पुरबी सामने आकर अकारण ही कुछ देर तक ही ही ही ही कर हँसती रही। फिर बोल उठी—*'ओह, वही बादशाह-भोग न?'*

घोष साहब लड़की की तरफ जरा कोमल कटाक्ष करके बोले—'क्या भोग है मैं नहीं जानता हूँ। बस इतना कह सकता हूँ कि सुना है तुम्हारी माँ ने कहीं से सीख कर बनाया है।'

चाचीजी आईं।

गोरा रंग, शान्त भंगिमा, कैसा भाव-शून्य सा चेहरा।

इन्हें देखते ही पार्थो को लगता है गोरे लोगों का चेहरा शायद भाव-शून्य हो

होता है। हालाँकि बहुत से तीक्ष्ण गोरे चेहरे भी देखे हैं। पुरबी को ही देख रहा है। पुरबी इनकी इकलौती लड़की है।

पुरबी को माँ का रंग और पिता का चेहरा मिला है। और शायद माँ-बाप की प्रकृति के संमिश्रण के फलस्वरूप ऐसा स्वभाव पाया है कि उसे समझा नहीं जा सकता है। कभी बड़ी सरल लगती है, कभी बड़ी चालाक।.. कभी लगेगा बेहद ममतामयी है, कभी लगेगा भयानक-निष्ठुर। कभी लगती है धृष्ट-अहंकारी, कभी लगती है अबोध-असावधान।

फिर भी पुरबी, पार्थो को नेक-नजर से देखती है, यह समझ में आता है। और इसका कारण है शायद बेचारी की निःसंगता। एक तरुणी के लिए सिर्फ बाप-माँ का संग ही सम्पूर्ण पथ्य नहीं है, यह कौन नहीं जानता है?....लेकिन सुना है घोष साहब ने यहीं राम कस कर पकड़ रखी है।

उन्होंने लड़की को हर तरह की स्वाधीनता देने पर भी, मित्र बनाने के मामले में नहीं दी है। अतएव पुरबी के दोस्तों की संख्या ज्यादा नहीं है, कम से कम यहाँ प्रश्रय नहीं मिलता है। सहेलियों को ही नहीं तो दोस्तों को प्रश्रय कहाँ मिलता है?

लेकिन क्या पुरबी को माँ के मित्रों को कोई प्रश्रय मिला है? पुरबी के ननिहाल के लोगों में से किसी को? न, इस घर के एकछत्र अधिपति हैं संजय घोष। यह गृहस्थी सिर्फ उन्हीं के इच्छानुसार चलती है। वे पार्थो नाम के लड़के को लाकर खातिर कर रहे हैं, प्रश्रय दे रहे हैं, घर में लाकर लड़की के साथ मिलने-जुलने दे रहे हैं, यह भी अपनी इच्छा से कर रहे हैं—इसीलिए। वरना पार्थो की हिम्मत होती इस घर की देहरी लाँघने की?

चाची जी आकर खड़ी हुईं।

यद्यपि पार्थो की आदत पाँव छूने की नहीं है फिर भी काकू के सामने चाची जी को देख कर अजीब तरह की उलझन सी होती है, लगता है, शायद नमस्ते करना चाहिए। इधर अभ्यास न होने की वजह से 'वही चाहिए' नहीं कर पाता है। इसीलिए मृदु मुस्कुराहट के साथ उठ खड़ा हुआ।

चाचीजी भी अकचका कर बोलीं—'रहने दो, रहने दो।'

नमस्कार न करने पर भी बोलीं। शायद अभ्यासवश ही।

पुरबी खिलखिला कर हँसने लगी बोली—'पार्थो दा तो तुम्हें प्रणाम नहीं कर रहे हैं, फिर रहने दो-रहने दो, क्यों कर रही हो?'

महिला शर्मिन्दा होकर बोलीं—'हर बात पर तू मजाक मत किया कर।'

उसके बाद स्वयं फ्रिज खोल कर, आराम से एक बड़ी प्लेट पर बड़ी-बड़ी दो मिठाइयाँ लेकर पार्थो के सामने आईं। प्लेट में चम्मच भी था।

'खाइए पार्थो दा, इसका नाम है बादशाह-भोग। माँ ने बड़ी मेहनत से तैयार

किया है।'

कह कर रूबी ने फिर खूं-खूं कर हँसना शुरू किया। यूं देखो तो लगेगा अकारण हँस रही है। संजय काकू भी कह बैठे—'देखो पगली को! बेमतलब क्यों हँस रही है?'

परन्तु प्लेट को तरफ देखते ही पार्थो समझ गया, हँसी बेमतलब की नहीं है। परभेदो विभीषण की हँसी थी। यह छह इंच स्क्वायर और दो इंच मोटा चित्रकूट, किसी हालत से इस महिला द्वारा तैयार किया हुआ नहीं है, यह बात समझने भर की बुद्धि पार्थो रखता है। जितना ही वह गृहस्थी के मामले में अनभिज्ञ क्यों न हो।

पार्थो ने शादी के घरों में इस तरह की स्पेशल साइज की मिठाइयाँ देखी है।

कल ही शादी के घर से वापस आई हैं चोप गृहणी, अतएव दो और दो चार की गणित पानी सी स्पष्ट है।

लेकिन?

इसके अर्थ क्या हैं? ऐसा क्यों?

मन ही मन पार्थो बोला—'मुझे बच्चा समझा है क्या? इसीलिए इस बचकानी कहानी पर विश्वास करूँगा? और इस कहानी की जरूरत हो क्या है? मैं क्या महिला की महिमा पर मुग्ध हो जाऊँगा? हो भी जाऊँ तो तुम लोगों का फायदा क्या है? सीधे कह देते—शादी के घर से मिठाई आई है, पार्थो खाओ।'

नहीं, इससे साहब की प्रेस्टिज चली जाती। इसके अलावा, ऐसा कहते तो उस लड़के को जो रिश्तेदार न हो, 'पकड़ लाने' का जोर न पाते। लेकिन इसकी जरूरत ही क्या थी? कुछ नहीं, कुछ नहीं—सिर्फ हर तरफ से संड़सी की तरह आक्रमण करने की कोशिश है। खुद और लड़की दोनों की कोशिश के ऊपर, इस निरीह महिला को लादा जा रहा है। बेटा, तुम्हारे इस आक्रमण से मैं दबने वाला नहीं। तुम्हारी इस नखरेबाज, चालू और वाचाल लड़की को अगर मेरे कन्धे पर लादने की इच्छा है तो जान लो, वह इच्छा मचान पर चढ़ी लतर की तरह जमीन पर लोटेगी।

घर की बनी मिठाई? कहाँ न जाने सीख कर मेहनत से बनाई गई है।

भूत के आगे भूतबाजी।

लेकिन यह सभी मन में प्रवाहित होने वाली बातें थी। पार्थो तब मुंह से यही कह रहा था—'अरे सर्वनाश! यह तकिए की तरह मोटी-मोटी मिठाइयाँ बनाई है? अरे बाप रे! लेकिन इतना कहीं खा सकता है कोई? आधा दीजिए, सिर्फ आधा। आधा ही एनफ् है।'

उदार आवाज में घोष साहब बोले—'क्या कहते हो ? तुम लोग बच्चे हो ! दो मिठाई भी नही खा सकते हो ? मैं तो खाऊँगा। तुम्हारे सामने ही खाऊँगा। कहाँ—मेरा हिस्सा भी लाना तो।'

महिला ने फिर फ्रिज खोला, प्लेट निकाली, प्लेट पर चम्मच रखा और दो वही वृहदाकार राक्षसी 'चित्रकूट' मिठाई रख कर पति देवता की तरफ बढ़ा दिया।

पार्थो के अन्दर का आदमी बोलता रहा—'तो भी साली के यहाँ दावत खाने के बाद काफी बाँध लाए हो। कुटुम्ब के घर से आई मिठाई क्या सभी झाड़ लाए हो ? दिखा कर या बिना दिखाए ? बहुत से मोटर वाले ऐसा करते हैं, मैंने सुना है। किसी एक मौके पर मोटर में भर देने के बाद, चलते वक्त कहते....'नहीं-नहीं, यह सब क्यों ? कौन खाएगा ?'

'यह देखो मैं खा रहा हूँ।' घोष साहब कहते।

इधर पार्थो के भीतर का आदमी कहता ही चल रहा है—खा रहे हो तो क्या मेरा सिर खरीद लिया है ? तुम अवश्य ही मेरे गुरुदेव नहीं हो कि तुम जो करो वही मैं भी करूँ ? 'नहीं-नहीं, असम्भव। मेरे लिए असम्भव है। आप लोग उस समय के लोग हैं, खाने-पीने की आदत है। हम लोग मिलावट के युग के जीव हैं।....उठा लीजिए, उठा लीजिए। कम से कम एक उठा लीजिए।....ओफ.... कैसे इतना बड़ा काण्ड आप कर बैठी हैं ?'....(चम्मच से काट कर जरा सा खाकर) अद्भुत बढ़िया बनी है। कल्पना भी नही कर सकता हूँ कि घर की बनी है। न चाचीजी, आपको एक मिष्ठान्न विशारद जैसी टाइटिल देना उचित होगा।'

(वह आदमी)

फ्रिज से निकाल कर देने पर भी, मुझे तो शादी के घर की बासी मिठाई में खट्टापन और गन्ध मिल रही है। फिर भी मुझे इस विशाल तकिए को गले से उतारना पड़ेगा। कारण—सौजन्य। हाय, ऐसे अकारण झूठ बोलने वालो का क्या होगा ?

'इस तरह की रसोई आप कब करती है ?....दोपहर में ? ए है, आप इतना परिश्रम क्यों करती हैं ? विश्राम करती नही है ! हालाँकि हमारा तो इसमें लाभ ही है ?'

(आदमी)

'लाभ नही तो हानी ! अभी बदहजमी हो जाएगी। सिर्फ डालडा का माल है ! तुम बुड्ढे वह दोनों पार कर बैठे ? रातो-रात मरोगे।'

'ओह चाची जी ! आपने जो भयानक काण्ड आज किया है, अब आज रात को खाना नही खाना पड़ेगा।'

घोष साहब कह उठे—'कैसी बात करते हो पार्थो ! उस एक मिठाई को खा कर तुम....जब कि घर में अच्छे घी से बनी है। नहीं नहीं, इस उम्र में अपने को आदत के हाथों में मत छोड़ो। मैं तो शाम को यथारीति मुर्गी का शोरबा और चावल खाऊँगा।'

(वह आदमी)

'फिर ! फिर तेरी तुलना ! बुड्ढा बदमाश है ! झूठों का राजा है। तू जो कुछ करेगा, मुझे भी वही करना होगा ?....आज निहायत ही बहाना बना कर पकड़ लाए हो....कल से देखता हूँ कौन आता है। तुम महिला कम नहीं हो। चुपचाप प्रशंसा हजम कर रही हो। अथवा तुम इनके हाथों की गुड़िया हो। साहब जो कहेंगे—वैसा ही करना पड़ेगा। बेचारी !'

'अच्छा चाची जी...इसमें क्या-क्या चाहिए ? खोर, छेना, घी और चीनी ? अब से जरा छोटा बनाइएगा। यह सब अति विशाल जीवों को हजम करने लायक पाकस्थली में जोर अब किसी में नहीं है।'

(वह आदमी)

अरे बाप रे ! इकदम खट्टी डकार है ! परेशान करेगी ! यह सब तुम-से बड़े आदमियों को ही सुहाता है।....उफ, बादशाह-भोग न बुद्धि भोग।'

मिष्ठान्न-पर्व समाप्त हुआ।

फिर एक बार चाची जी की शिल्पकला की महिमा का उल्लेख कर पार्थो ने विदा ली। अब साहब स्वयं ड्राइव करके नहीं पहुँचाएँगे, ड्राइवर जाएगा।

हाँ, एक पालतू ड्राइवर तो है ही। उसे बैठा कर साहब अपना रथ अपने आप हाँकते हैं।

हालांकि पार्थो ने बार-बार कहा—इतना सा रास्ता वह खुद पैदल जा सकता है, लेकिन स्नेहमय काकू न माने।

बोले—'जाए न, हर्ज क्या है ? साला बैठे-बैठे तन्ख्वाह खाता है।'

सो, एक आदमी अगर बैठे-बैठे तन्ख्वाह उड़ा रहा है तो उसके लिए काम जुटाना एक पवित्र कर्त्तव्य है।

अतएव पार्थो वही कर्त्तव्यभार कन्धे पर उठा लेता है।

काकू नरम, लेकिन शिक्षा देने के इरादे से कहते हैं—'रूबी जाओ ! पार्थो को पहुँचा आओ।'

'नहीं नहीं....अब उस बेचारी को क्यों....'

'नहीं पार्थो। इतना बेचारी-बेचारी करना ठीक नहीं। यह सब सीखना जरूरी है। रूबी....'

रूबी खुक-खुक हँसी हँसते हुए पार्थो के साथ सीढ़ी उतरने लगी।

'खाया माँ के हाथ की मिठाई ?'

'खाया तो ! इसमें इतना हँसने की क्या बात है ?'

'कैसी लगी ?'

'बहुत बढ़िया ।'

'ही ही ही ! इसीलिए कहते हैं....'

'क्या कहते हैं ?'

'कुछ नहीं । अच्छा पार्थोदा, बुद्धू का उच्चारण बताइए....'

× × ×

'उनके साथ दार्जिलिंग ?' पार्थो के पिता जी विपन्न सी आवाज में बोले—'लगता है लड़के को उन लोगों ने ले ही लिया ।'

पार्थो की माँ ने ढीली-ढीली आवाज में चीख कर कहा—'ये बात करने का क्या ढंग है ? आदमी क्या, ऐसे दोस्त-परिवार के साथ या दोस्तों के साथ घूमने नहीं जाता है ?'

'यह नहीं कह रहा हूँ कि जाते नहीं हैं'—पार्थो के पिता जी कमरे की एक छोटी सी जगह पर चक्कर लगाते हुए अन्यमनस्क से बोले—'वह बात दूसरी है ।'

'दूसरी तरह की क्या बात है ? अपना लड़का नहीं है, इसीलिए दूसरे की लड़की की तरफ खिचाव है ।' पार्थो की माँ आँखों के कोने में बिजली चमका कर बोलीं—'तुम्हें नफरत हो रही है ?'

'बेकार की बात मत करो ।' पार्थो के पिताजी बोले—'उस लड़के से तुम्हें अब सुदिन देखने की आशा नहीं रही ?'

अब पार्थो की माँ बिगड़ गईं । हल्की आवाज त्याग गला चढ़ा कर बोलीं—'क्यों, इतने दिनों तक तो तुम्हें ये बातें याद नहीं आई थी ? लालाजी ने उसे नौकरी दी, मोटर से ले आना ले जाना कर रहे हैं, नित्य ही दावत देते हैं—इससे पहले इसके लिए तो अफसोस करते कहीं देखा ? जैसे ही उस आदमी ने कहा—'विदेश जा रहा हूँ, तबियत विशेष ठीक नहीं है । एक जवान लड़का साथ रहने पर उपकार ही होगा, वह साथ चले ।' बस तुरन्त जलन होने लगी—क्यों ? उपकार लेते वक्त दस भुजा और उपकार करते समय ठेंगा—है न ? इसे क्या कहते हैं जानते हो—चित्त की दैन्यता ।'

'कह लो, अभी जितना कह सकती हो कह लो ।' पार्थो के पिता जी बोले—'बाद में समझोगी । उस वक्त सिर पीटोगी ।'

संजय घोष पार्थो के पिता जी की वजह से इस घर में परिचित हैं । बहुत दिनों पहले, बाल्य-काल में पार्थो के पिता जी और संजय घोष एक ही मोहल्ले के लड़के थे । समवयस्क न होने पर भी एक ही स्कूल में पढ़े हैं, एक ही मैदान में खेले

हैं, एक ही लटाई से पंलग उड़ाई है।

बहुत सालों बाद फिर न जाने कैसे यह संयोग हुआ। तब से पार्थो की माँ जी-जान से कोशिश करके इस मिलन-सूत्र को दृढ़ कर रही है, चमका रही हैं।

करती ही जा रही है चमकदार, तेल लगा-लगा कर।

जिसका नाम है स्नेह पदार्थ।

लेकिन संजय घोष नामक आदमी को अच्छा ही कहना पड़ेगा। कब की बाल्यकाल की दोस्ती की स्मृति को मर्यादा दे कर, अब अपने गौरवोज्ज्वल दिनों में निहायत ही हीन, सिर्फ क्लर्क आदमी को मित्र कह कर स्वीकार करना क्या कम महत्त्व रखता है ?

इसके अलावा तेल के बदले तेल भी तो वे कम नहीं देते हैं ? पार्थो की माँ की गृहस्थी के रथ का चक्का ज्यों ही चरमरा कर आवाज कर उठता, संजय घोष आगे बढ़ नहीं आते हैं ? दूसरा एक 'स्नेह' पदार्थ जैसा उपचार लेकर ?

पार्थो के पिता जी इसे न समझने का भाव करने पर भी क्या सचमुच समझते नहीं हैं ? इसीलिए क्या कृतज्ञ होना भूलते जा रहे हैं ?

उच्च हृदय न होता तो क्या पड़ी थी संजय घोष को कि पार्थो को बुला कर अच्छी नौकरी दिला दी ? क्या जरूरत थी उसकी क्रमश: उन्नति के लिए जी-जान से प्रयत्न करने की ?

इसके बाद भी पार्थो की माँ कृतज्ञ न होंगी ?

और इसके बाद भी वे लोग प्रयोजनवश अगर लड़के को माँगें, तो मुँह बिगाड़ कर कर सकती हैं—'वे लोग लड़के को लिए ले रहे हैं ?'

नहीं, पार्थो के पिता की तरह पार्थो की माँ इतनी कुटिल या नीच मन की नहीं हो सकती हैं।

लड़की भी तो 'एक चीज' हुई है।

उपकारी की अवज्ञा और घृणा करने में ही जैसे सारी बहादुरी है।

लड़का भी वैसा ही था। नौकरी पाने के बाद से थोड़ा सभ्य हुआ है। जैसा भी हो, माँ का ही तो लड़का है—बाप की तरह दिल से इतना दीन-हीन नहीं है।

भद्रा भी माँ की ही लड़की है, यह बात भद्रा की माँ को याद नहीं रहती है। भद्रा की माँ सोचती, ताज्जुब है, एक बार भी क्या सौजन्यता नहीं दिखानी चाहिए ?

उन लोगों में यह सब नहीं है, इसीलिए न पार्थो की माँ को सारा दायित्व वहन करना पड़ रहा है ? ये लोग अगर ज़रा सी भी सौजन्यता दिखाते तो पार्थो की माँ को इतना न दिखाना पड़ता।

और पार्थो के पिता ?

यह आदमी भी अद्भुत जीव है। पार्थो की माँ सोचतीं, संजय जब आता है,

लगेगा जैसे विगलित हुए जा रहे हैं, लेकिन उसके जाते ही दूसरी मूर्ति। मानो जलन के मारे छटपटा रहे हों। सब उसके लिए व्यंगोक्ति। बहुत स्पष्ट या प्रखर नहीं, फिर भी पार्थो की माँ को समझने में दिक्कत नहीं होती। यह बात औरतें समझ जाती हैं, पुरुषों की वैसी क्षमता नहीं है।

पार्थो के पिता, अपनी गृहस्थी में संजय घोष का आना पसन्द नहीं करते, इसीलिए उन्हें सिर चढ़ाना पड़ता। लेकिन सिर चढ़ाने के कारण जो हिंसा-भाव, बातों और आचरण से स्पष्ट होता, वह भी कम नहीं।

हालाँकि ये भाव खूब सूक्ष्म थे।

लेकिन आज जैसे अपने आपको उद्घाटित कर बैठे। बरना कहते—'लड़के को उन लोगों ने ले लिया।'

'तुम्हारे इस महामूल्यवान लड़के को लेकर वे क्या करेंगे—बताओ तो जरा?' पार्थो की माँ यह तीखा सवाल पूछ बैठती।

पार्थो के पिताजी जवाब में सिर्फ भौंहें सिकोड़ते—'लड़का लेकर लोग क्या करते हैं, नहीं जानती हो? दामाद बनाते हैं।'

दामाद बनाएँगे?

'तुम्हारे लड़के को दामाद बनाएँगे? तुमने तो हँसाया। उनकी इतनी सुन्दर लड़की, उस पर उनकी अगाध सम्पत्ति। जो है वह लड़की ही पाएगी। उस लड़की को वह तुम्हारे लड़के को खुशामद करके देने आएगा? ही ही ही....तुम्हारे घर में लड़की देगा संजय घोष?'

'मेरे ही घर में तो देगा—' पार्थो के पिता कुछ क्लान्त स्वरों में बोले—'जिससे लड़की को ससुराल न जाना पड़े। तुम्हारे लड़के को ही लड़की पकड़ाएगा वरना और किसके लड़के को घरजमाई बनाएगा?'

पार्थो के पिता, उसी आदमी की तरह नहीं लग रहे हैं? दुमंजिले बस पर जो बाजार का थैला हाथ में लिए बैठा था, जिसे देख कर पार्थो को अपने पिता की याद आ गई थी।

जीवन-युद्ध में पराजित लोगों का चेहरा शायद एक-सा ही होता है।

जबकि पार्थो के पिता के रिश्तेदार, पार्थो के पिता से बेहद ईर्ष्या करते हैं।

पहली बात, एक झुण्ड लड़के-बच्चे लेकर यह आदमी दिशाहीन नहीं है। वर्षों हो गए, लड़के लड़कों को पालपोस कर राजा बना बैठा है। उस पर नौकरी रहते रहते, बेकार और गप्पबाज लड़का एकदम ही बढ़िया नौकरी पा बैठा।

उधर लड़की तो नहीं है, जैसे एक सिपाही हो। सभा बुलाती है, समिति बनाती है। स्कूल खोला है, समाज सेवा करती है और उसी बीच ट्यूशन कर-कर के अपना खर्च भी चलाती है। इसके बाद भी क्या कहना होगा कि पार्थो के पिता जी, क्षितीश मुखर्जी जीवन-युद्ध में पराजित हैं? दिमाग खराब है क्या?

असल में, सारी जड़ है यह पत्नी। उनकी तरफ देखो जरा। लड़के की शादी की उम्र हो रही है और अभी भी खुद का चेहरा देखो ? मानो नवयुवती है। हास्यवदनी।

यही अगर पराजित होने का नमूना है तो विजय-गौरव का चेहरा क्या होगा ? क्षितीश मुखर्जी भाग्यवानों के लिए नमूना है।

लेकिन उनके चेहरे के भाव देखो।

जैसे सारे दिन सौदा करके घर लौटते समय देखा हो कि थैला खाली है। कहीं छेद था, धीरे-धीरे यहाँ से निकलते-निकलते, सब खाली हो गया है।

क्या, फिर थैली की सिलाई कर नए सिरे से सौदा खरीदें ? या आशा छोड़ कर बाजार के एक किनारे बैठे रहें ?

उस चेहरे पर एक किनारे बैठे रहने की इच्छा ही स्पष्ट है।

लेकिन पार्थो की माँ के मन में आशा का समुद्र लहरा रहा है। अभी उसमें ज्वार आया है। पार्थो की माँ, जिनके माँ-बाप ने कभी उनका नाम रखा था वीणापाणि, वह तो मन ही मन लड़के के पैसे से तिमंजिला बना कर तैयार कर रही है। मोजैक की फर्श, फैशनदार ग्रिलवाली खिड़की, एटैच्ड बाथ। ससुर के समय के इस मकान की शक्ल ही बदल डाली है उन्होंने। उसके बाद पहली-दूसरी मंजिल किराए पर उठा कर मकान मालकिन भी बन बैठने का मधुर स्वप्न देखने में विभोर है।

लड़की तो बिगड़े हुए कब्जे वाले ट्रंक की तरह है, चाभी नहीं लगती, इसीलिए निश्चिन्त नहीं हो पाती है। जाने दो। इच्छा होगी शादी करेगी, इच्छा होगी नहीं करेगी। पार्थो की शादी कर जल्दी से बहू ले आएगी।

लेकिन इस बहू की शक्ल कैसी होगी ? यहीं पर सारी चीज धुंधली लगने लगती।

तर्क करने के लिए, क्षितीशबाबू का सन्देह स्वीकार न करने पर भी वीणापाणि के मन में यह बात न आई हो, ऐसा नहीं। लेकिन उस सन्देह को मानना तो मुश्किल है।

सजय घोष, हृदय की एक सूक्ष्मतम दुर्बलतावश, कुछ मामलों में ढीला-ढाला होने पर भी, वह मात्राहीन रूप से इतना, शिथिल नहीं होगा कि वीणापाणि के घर अपनी एकमात्र लाड़ली कन्या को दे बैठे।

कहने दो क्षितीश को—'यहाँ नहीं रहेगी इसीलिए तो इस घर में....', लोगों के आगे शादी के वक्त परिचय नहीं देना पड़ेगा ?

या ब्राह्मण के घर में लड़की देकर ऊँची जाति में उठना चाहता है ? पदवी तो घोष है।....भगवान् जानते हैं, कायस्थ है या ग्वाला। हालांकि आज के इस युग में जाति-पाति लेकर कोई परेशान नहीं होता है, फिर भी हो सकता है ऊँची

पार्थो के प्रति उनमें यह कमजोरी।

वरना—अचानक इस बनाए गए रिश्ते के भतीजे के लिए इतना स्नेह कहाँ से झर रहा है? दोस्ती तो आज की नहीं है?

इस तरह का सन्देह पार्थो की माँ करती हैं फिर भी पति से झगड़ा करते हुए कहती हैं—'यह सब मन की दीनता है। एक मित्र परिवार के साथ दस दिन के लिए घूमने जाने से ही 'उनका' हो जाएगा?'

अतएव दूसरी बहू आएगी।

लेकिन इस दूसरी बहू को जैसे पकड़ नहीं पा रही हैं वीणापाणि। भद्रा ने एक दिन कहा था—'तुम लड़के के लिए बहू ढूंढोगी? तुम्हारी पागलों की सी यह चिन्ता क्यों है? जिसे चाहिए वह स्वयं ही ढूंढ निकालेगा, शायद ढूंढ भी रहा है, सिर्फ कीचड़ में पड़े रहने की वजह से....।'

उन दिनों पार्थो बेकारी के कीचड़ में पड़ा हुआ था।

लेकिन अब किसी दिन भद्रा ने यह बात नहीं कही थी, बल्कि बीच-बीच में तीक्ष्ण हँसी हँस कर कहती है—'तो माँ अब बड़े आदमी के बनाए गए रिश्ते की भाभी के पोस्ट से लिफ्ट पाकर सचमुच के रिश्ते की समधिन बनने जा रही है? आहा, बहुत ही शुभ समाचार है। इसके बाद महाशय को कुछ भेजने के लिए उपलक्ष आविष्कार करना नहीं पड़ेगा, यूं ही सामान से तुम्हारा घर भर सकेंगे।'

इस तरह डंक मार कर कही गई बातें वीणापाणि को बरदाश्त करनी पड़ रही है। पति के साथ जैसे प्रबल तर्क कर सकती हैं, लड़की के साथ नहीं कर पाती हैं।

ऐसी ही परिस्थिति में दार्जिलिंग जाने का प्रस्ताव आया। घोष साहब वीणा-*पाणि के पास ही अर्जी पेश कर गए हैं। बाहर जा रहे हैं, अपनी उम्र हो रही* है, साथ में एक कम-उम्र लड़का रहने पर मन की ताकत बढ़ती है। 'आपके पास ही अर्जी पेश कर गया।'

वीणापाणि क्या इस परम गौरवमयी अर्जी को पति-पुत्र के सामने पेश न करेंगी?

सुनते ही पहले पार्थो गुस्से से जल-भुन कर खाक हो गया। कहा था—'उनकी उम्र हुई है? पर मुझसे काफी ज्यादा यंग हैं वह। मैं उनका मनोबल बनने आऊँगा? जगत् में बैंक-बैलेन्स ही सबसे बड़ा टोने का बल है, जानती हो माँ? साल में पाँच बार बाहर जा रहे हैं, अचानक इस बार ही ऐसा....नहीं नहीं, *मुझसे यह सब नहीं होगा। किसी की खिदमतगीरी मुझसे नहीं हो सकेगी।'*

वीणापाणि ने कहा था—'वह लोग क्या तुझे नौकर बना कर ले जा रहे हैं?'

'नहीं बना कर ले जा रहे हैं ऐसा भी तो नहीं कहा जा सकता है। दिव्य-चक्षु से मैं देख रहा हूँ कि काकू को वह नखरेबाज लड़की का शौक पूरा करने के

लिए मुझे हर वक्त खेलना होगा, घूमना होगा, गाना सुनना होगा, अजीब-अजीब पहेलियों का हल बताना पड़ेगा। और चाची जी नाम की महिला जब बाजार से खरीद कर चीजों को 'खुद बनाया है' कह कर खिलाएँगी तब जान-बूझ कर भी, बेवकूफों की तरह खाकर तारीफ करनी पड़ेगी। असहनीय! तुम कह देना, मैं जा-वा नहीं सकता हूँ।'

ठंडी आवाज में वीणापाणि बोली थीं—'फिर तुम खुद ही कह देना।'

'मैं क्यों कहने जाऊँगा? मेरे पास तो प्रस्ताव आया नहीं है।'

'ठीक है, यही कह दूँगी। लेकिन बहाना क्या बताऊँगी? यह तो नहीं कहा जा सकेगा कि दफ्तर से छुट्टी नहीं मिली है।'

'कह देना, उसने दोस्तों के साथ अन्यत्र जाने का निश्चय किया है।'

वीणापाणि और ठंडी हुईं।

बोलीं—'अच्छा। यही कहूँगी। कहूँगी—तुमने उसके बहुत उपकार किए हैं, लेकिन मेरा लड़का इतना अकृतज्ञ है कि तुम्हारा यह मामूली सा उपकार भी....'

'इस तरह कह कर सुख मिले तो यही कहना,' पार्थो गुस्सा हो गया, 'दूसरी तरह से भी कहा जा सकता है।'

× × ×

यह बात पार्थो ने कही थी। 'दूसरी तरह से भी कहा जा सकता है'—लेकिन जब सीधे उसी के पास प्रस्ताव आया तब यही बात किसी तरह से जीभ पर न आई। कह बैठा—'अच्छा ही तो है। आपने जब छुट्टी मन्जूरी का जिम्मा लिया है तब मुझे असुविधा क्या होगी?'

'पहले कभी दार्जिलिंग गए हो?' घोष साहब ने पूछा था।

जैसे वह क्षितीश मुखर्जी के घर का हाल नहीं जानते हों। हालांकि पार्थो ने यह बात नहीं उठाई।

पार्थो ने सिर्फ कहा, 'नहीं, जाना नहीं हुआ है।'

'फिर तो तुम्हारे नाखुश होने की कोई वजह नहीं।'

नाखुश! पार्थो की आँखों के आगे कुछ पीले रंग के फूल जैसे खिल उठे।

जरूर माँ का काम है। सौतेलापन दिखा कर उसके एतराज की बात कह दी है। क्या पता और क्या-क्या कहा है। काकू के सामने आते ही तो दुलार के मारे लोटने लगती हैं और तब लगेगा कि घर का हर आदमी उनके विरुद्ध है।

कह दिया होगा, सब कुछ कह दिया होगा। रूबी के नखरे की बात पर जो मन्तव्य किया था पार्थो ने, चाची जी की मिठाई की बात पर जो व्यंग कसा था, जरूर सब बता दिया होगा। आक्रोशवश अपने ही लड़के के मुँह पर कालिख पोती होगी।

पोती ही तो है।

घोष साला जी के आते ही तो पार्थो ने देखा है कि माँ कैसे पिता जी की बुराई करने बैठ जाती हैं। तब लगेगा, पिताजी कटघरे में खड़े हुए अपराधी हों और माँ जज के सामने खड़ी विरोधी पक्ष की वकील।

पीले फूल आँखों के आगे से हट कर छोटे-छोटे पसीने की बूँदों के रूप में माथे पर झलक आए। पार्थो प्रायः कातर व व्याकुल गले से बोला—'नाखुश होने की बात कहाँ उठ रही है काकू ? मुझे तो सोच कर ही बहुत मजा आ रहा है।'

'ऑलराइट, ऑलराइट।'

घोष साहब कहते हैं—'तुम्हें कुछ करना नहीं होगा। जो कुछ करना होगा तुम्हारी चाची जी ही करेंगी। सिर्फ अपना सूटकेस....ओ अच्छा, तुम तो कलकत्ते के लड़के हो, गरम सूट न रहना ही संभव है। मेरे साथ चलना तो आज मेरे दर्जी के पास।'

मेरे दर्जी के पास !

इस प्रस्ताव को हालांकि पार्थो ने आसानी से नहीं मान लिया था। बहुतेरा 'न न' किया था, लेकिन संजय घोष जैसे आदमी जब दोनों कन्धों पर हाथ रख अंतरंग स्वरों में बोले थे—'माई बॉय, इस मामूली सी बात पर अगर तुम 'किन्तु-किन्तु' करो तो फिर मुझे रिश्ते के सम्बोधन से बुलाना भी बन्द करना पड़ेगा तुम्हें। तुम्हारे अपने चाचा होते तो क्या उनसे न लेते ?....इसके अलावा बचपन में लोगों के पास कितने गरम सूट रहते हैं ? निहायत धनी पुत्रों की बात और है। कहूँगा तो तुम सोचोगे काकू बना कर कह रहे हैं लेकिन सच बात है। मेरे पास ही बहुत दिनों तक एक भी गरम सूट नहीं था।'

तब पार्थो क्या करे ? जीवन की इस परम दीनता की घटना को साहस के साथ उद्घाटित करने के बाद, सच की ज्योति से दमकते चेहरे से घोष साहब पार्थो नामक निरुपाय जीव को देखने लगे। और अस्फुट स्वरों में पार्थो बोला—'अच्छा !'

जबकि पार्थो ने आज सोमा के यहाँ जाने का संकल्प किया था।

आज तनख्वाह मिली थी। आज सोमा के लिए उपहार और उसकी दादी के लिए फल लेकर जाता।

दर्जी के पास से जब छुट्टी मिली, तब जाना संभव न था।

लेकिन दूसरे दिन।

उसके बाद वाले दिन।

दार्जिलिंग मेल पर चढ़ने के पहले तक।

न ! पार्थो एक मिनट का भी समय नहीं निकाल सका था। गाड़ी पर चढ़ कर बैठने के बाद कहीं जा कर चैन की साँस ले सका था।

× × ×

स्टेशन ले जाने के लिए घोष साहब नहीं, कार लेकर ड्राइवर आया था। घोष साहब ने कहलाया था—अगर कोई घर से स्टेशन जाना चाहे।

वीणापाणि के मन में दुर्दमनीय लोभ जागा था, लेकिन संभालना पड़ा। क्योंकि लड़के-लड़कों से वह बहुत डरती हैं। इसी बात को लेकर माँ का मजाक जरूर उड़ाएँगे। और अपने वक्त ?

इसी लड़के को देखो न, कितना नखरा किया, पहले—उसके बाद ? कहावत है न, 'जग हँसाई भी कराई, इज्जत भी गँवाई।' यह भी वही हुआ है।—मेरे आगे जितना उछलना कूदना, 'नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा।' और ज्यों ही काकू ने 'तू-तू' किया, दुम दबा कर पीछे हो लिए।....आखिर में लगता है वही होगा जो घर का आदमी कह रहा है। लड़की का फन्दा लड़के के गले में डाल कर उसे घर जमाई बनाने का मतलब है।....लड़के पर नेक नजर डालने के बाद से मुझसे दो बातें करने का भी साहब के पास वक्त नहीं रहा है।....इसी मतलब से हो क्या साहब इस घर में आते जाते थे ?....मेरा भाग्य है।....सुना है नए साल से पार्थो की तनख्वाह हजार रुपए हो जाएगी। लेकिन बेल पके तो कौए का क्या ? लड़की के साथ शादी करके घरजमाई बना डालने पर, उसे हमारे साथ सम्पर्क रखने देंगे ?....हो गया हमारे यहाँ तिमंजिले का उठना।

लड़के को कार पर चढ़ा कर वीणापाणि अपने ही आप अफसोस करती रहीं।

इस यन्त्रणा की कोई सान्त्वना नहीं है, साथी नहीं है। यह है घूँसा खाकर घूँसा चुराना।

अब क्या कभी पार्थो से चिल्ला-चिल्ला कर वीणापाणि कह सकेंगी—बेटा, तुम्हारे मनपसन्द काकू ने तुम्हारा मुँह देख कर नौकरी नहीं दी है। नौकरी लगी है इसी माँ की वजह से। यह तुम्हारी माँ अगर बनाए हुए लाला जी के साथ इतना रंग-रस न रखती, नौकरी लगाता वह ?....तुम तो नाक ऊँची करके नाक के सामने से निकल जाते थे।

आज 'काकू' कह रहे हो।

उसके बाद उसको लाडली लड़की से शादी करके 'पिताजी' कहोगे। और मैं ? घोष के घर में लड़का ब्याहने की शर्म से रिश्ते-नातेदारों के सामने सिर झुका कर खड़ी रहूँगी। मुँह से भले ही न स्वीकार करूँ, भीतर ही भीतर 'छोटी' नहीं हो गई हूँ ?....पेट की जनी लड़की भी मौका पाते ही अपमान करने से बाज नहीं आती है।....सब सहते हुए भी हँस कर दिन गुजार रही हूँ। क्यों ? इसीलिए न कि तुम लोगों को सुखी और स्वच्छन्द देखूंगी, तुम लोगों के इस घर का चेहरा बदल डालूंगी, तुम्हें दस जनों में से एक बनाऊँगी।....अब समझ रही

हूँ, जो भी कर रही हूँ, वह राख में घी छोड़ने के बराबर है। अब मेरी मौत हो तो जी जाऊँ।

× × ×

इधर जिस वक्त वीणापाणि लड़के पर भीषण अभिमान वश, अपने को धिक्कारती हुई मरण कामना कर रही थी, उस वक्त उनका लड़का मन ही मन माँ की बात सोच कर बेहद दुःखी हो रहा था।

निकलते वक्त माँ का कैसा असहाय-सा, सर्वहारा-सा मुँह देखा था पार्थो ने। इससे पहले क्या कभी माँ का चेहरा ऐसा देखा था? बड़ी देर तक सोचता रहा वह।

उसके बाद पार्थो ने अपने आस-पास ताक कर देखा। फर्स्ट क्लास कमरे के रिजर्व्ड सीट पर बैठा पार्थो नाम का लड़का चला है डैलशियर पर घूमने।....जिसकी माँ कभी थर्ड क्लास में भी बैठ कर कहीं घूमने नहीं गई हैं। न जाने कब जब बहू थीं, माँ ससुराल से मायके आती-जाती थी। जसोर और कलकत्ते आती-जाती थी। वही उनका गाड़ी चढ़ना था।

पार्थो जिन दिनों बेकार था, माँ तब खुशी से सोचती हुई कहती थीं—'पार्थो, तू जब बड़ा आदमी बनेगा, हम लोग खूब घूमेंगे—अच्छा? दुःखियों की तरह थर्ड क्लास में चढ़ कर नहीं, आराम से फर्स्ट क्लास का बर्थ रिजर्व करके, नया-नया सूटकेस लेकर। और जहाँ भी जाएँगे, अच्छे-अच्छे होटलों में रहेंगे।'

कभी-कभी पिता जी पर कटाक्ष करके कहती—'हालांकि ये सुन कर गुस्सा हो रहे हैं और सचमुच मह सब करूँगी तो ये मेरा मुँह भी नहीं देखेंगे....फिर भी मैं ऐसा करना छोड़ दूँगी क्या?....मुँह पर सुना दूँगी—'तुम्हारे पल्ले बँध कर तो सारी उम्र तकलीफ उठाई है, अब अपने लड़के की कमाई से खाऊँगी, आराम करूँगी। इतने दिनों बाद सारे शौक पूरे करूँगी। यही कहूँगी। अच्छा पार्थो, तेरे बाप को मैं ये बातें नहीं सुना सकती हूँ? हालांकि मेरा मुँह रखने के लिए तुझे अमीर बनना ही पड़ेगा।'

उस वक्त, सुन कर सिर से पाँव तक जल जाता था पार्थो। मन में आता था, चिल्ला कर कहे—'माँ, तुम पाँच साल की बच्ची नहीं हो, मैं भी पाँच साल का बच्चा नहीं हूँ।'

लेकिन अब पार्थो ही चला है नया सूटकेस लेकर, इस आराम की गाड़ी में बैठ कर।....जाकर एक मशहूर होटल में ठहरेगा।....पार्थो की माँ शायद अब उस गन्दे-गन्दे चौके में जाकर चूल्हा जला रही हैं।

पार्थो को रसोईघर का दृश्य याद आया। नौकरी लगने के बाद से लेकिन माँ देशभ्रमण की बात नहीं करती थी, सिर्फ माँ इसी बात की जल्पना कल्पना करतीं कि इस मकान को कैसे सुन्दर बनाया जा सकता है। माँ को इच्छा होती

थी पार्थो के पास बैठ कर यही सब बातें करें....लेकिन माँ की बातें सुनने में पार्थो को कोई उत्साह न था ।....सौजन्यतावश भी उसने कभी उत्साह नहीं दिखाया—पार्थो ने सोचा ।

सोच कर पार्थो का मन उतावला हो उठा । और इधर इन लोगों के साथ, लगातार इच्छा के विरुद्ध, उसे उत्साह दिखाना पड़ रहा है ।

× × ×

इस महीने की तनख्वाह में से मामूली सा कुछ ही माँ को दे आया हूँ । गरम पोशाक का दाम न देने पर भी, सूटकेस खरीदने में, जूते खरीदने में, कुछ सूती कपड़े खरीदने में बहुत सारा रुपया निकल गया था ।....इस बार माँ के इकट्ठा किए गए रुपए खर्च हो जाएँगे । जो रुपये माँ बहुत जोड़-जोड़ कर घर ठीक करने के लिए इकट्ठा कर रही है ।

अच्छा, माँ के लिए ले जाने लायक दार्जिलिंग में क्या मिलेगा ? सुना है लोग पत्थर की माला-वाला लाते हैं, लेकिन माँ के लायक क्या ले जाऊँगा ?

अनजाने उस दार्जिलिंग के बाजार को पार्थो मन ही मन टटोलता रहा । माँ के लिए उपयुक्त सामान खोजता रहा ।....उसके बाद न जाने कब मौका पाते ही, वह खोजी मन सोमा का आश्रय लेकर चक्कर काटने लगता है । हो सकता है पत्थर की मालाओं का सूत्र पकड़ कर सोमा आ गई है ।....धीरे-धीरे सोमा से सोमा की दादी पर ।....दार्जिलिंग के सन्तरे तो मशहूर हैं, और भी क्या-क्या फल वहाँ मिलते हैं ?

अच्छा ही होगा, इतने दिनों बाद सोमा की दादी के लिए फल ले जाने का एक सही कारण तो होगा । कोई कह न सकेगा—'अचानक क्यों ?'

कहीं घूमने जाने पर लोग दोस्तों के लिए, प्रियजनों के लिए उपहार नहीं लाते हैं क्या ?

भद्रा के लिए कुछ ऊन खरीद कर ले जाएगा, जरूर खुश होगी । उसके न जाने कौन-कौन सब दुःखी जरूरतमंद लोग हैं, उनके लिए जब-तब बिनते तो देखता है । एक दिन कहा भी था, ऐसा मोटा ऊन दार्जिलिंग में सस्ता मिलता है । उसकी किसी सहेली ने ला दिया था ।....अगर काफी सस्ता हुआ तो ढेर सारा ले जाएगा ।....और—

पीठ पर किसी ने कोंचा । पेंसिल से ? या बाल के काँटे से ? या सिर्फ बातों से ?

'पार्थोदा, क्या प्रकृति की शोभा देखते-देखते बाह्यज्ञान खो बैठे हैं ? या ध्यान कर रहे हैं ?'

पार्थो ने चौंक कर मुँह फेरा ।

रूबी चतुर हँसी हँस रही थी—'या जानबूझ कर इस वाचाल लड़की की तरफ पीठ फेर कर बैठे हैं—बात करने के डर से ?' ....

'ऐसा क्यों ? क्या आश्चर्य की बात है ?'

पार्थो घूम कर बैठा।

दोनों हाथ उलट कर रूबी बोली—'क्या पता। माँ और बापी ने अभी, दिन-दोपहर ही में अपर बर्थ पर चढ़ कर बिस्तर बिछा लिया है। मेरा एक पूरा उपन्यास खत्म हो गया। और अब तक ध्यानी बुद्ध का ध्यान भंग नहीं हो सका ?'

पार्थो इस वाचाल हँसी को बरदाश्त नहीं कर सकता। इतनी बड़ी पहाड़ सी लड़की, पता नहीं क्यों मोटी अँगुली से काजल लेपती है ...देखने में असह्य लगता है।

मन ही मन कहता, माँ-बापी अभी से बिस्तर क्यों नहीं बिछाएँगे ? तुम्हें मेरे ऊपर लादने के लिए ही।....शायद यही परिकल्पना है कि मुझे हर तरफ से घेर कर पकड़ ले जाएँगे ताकि लड़की के प्रेम में फँस जाऊँ।....मैं इस फन्दे में नहीं फँसने का बच्चू....निहायत ही रिश्तेदार की तरह हो गए हो इसीलिए कोई बात टाल नहीं पाता हूँ।....इन सब चिन्ताओं के बीच ही हालाँकि पार्थो को मुस्कुरा कर कहना पड़ा था—'रेल गाड़ी पर चढ़ने के बाद ज्यादा बातें नहीं करनी चाहिए। हार्ट खराब हो जाता है।'

'आप से किसने कहा है ? जितनी सब अद्भुत बातें !'

'अद्भुत बातों के माने ?' पार्थो कौतुक से बोला—'निखालिस सच बात है। यह सब भ्रमण-पुराण में लिखा है।'

'रहने दीजिए, ज्यादा चालाकी करने की जरूरत नहीं है....' न जाने कहाँ से एक पैकेट ताश निकाल कर फैलाती हुई रूबी बोली, 'इससे अच्छा है जरा मैजिक सीखिए....अच्छा इन ताशों में से किसी भी एक को सोच लीजिए....'

× × ×

'बेईमान पार्थो की गन्दगी देखो ?' अतिन ने घृणा से मुँह फेर कर कहा, 'वह सूअर भावी पत्नी के साथ छक्का-पंजा करने के लिए, पुराण के काकू का पिछलग्गू बन कर दार्जिलिंग गया है।'

फुटपाथ का गुलजार वातावरण कुछ फीका पड़ गया है आजकल। पार्थो तो गया ही है, टूटू भी पार्थो की तरह 'बेईमान' न होने पर भी, उसकी चुटिया तक नहीं दीखती है। बड़ा आदमी बनने के लिए वह स्वर्ग, मृत्युलोक, पाताल, घूमता फिर रहा है। एवम् सफलता के पहले सोपान पर पहुँच चुका है, यह उसकी आवाज से पता लग रहा है।

न जाने कहाँ से एक कर्कश आवाज करने वाली सेकेन्डहैण्ड मोटर बाइक उसने खरीद ली है और रात नहीं, दिन नहीं, उसी पर चढ़ा, आँधी की तरह घूम रहा है।

एक आध मिनट के लिए अड्डे पर आता है और उनकी बातों के बीच अपनी बातें छींटते हुए फैला कर फिर हवा हो जाता है।

बातें अवश्य ही 'बड़े आदमी' बनने के रास्ते का वर्णन स्वरूप होतीं।

इस रास्ते पर सुना है रुपया पड़ा हुआ है, धूल-बालू की तरह....बटोर लेने के लिए।

शुभेन्दु कहता, 'सो उस रास्ते का अता-पता बता जा न बेटा! थैला लेकर बटोरने के लिए पहुँचा जाए। एक ही झटके में क्यों न हम सब बड़े आदमी बन जाएँ?'

टूटू सिर हिला कर कहता—'मजाक है न? तो फिर बड़े आदमी बनना क्या हुआ? सब कोई मिल कर बड़े आदमी बनेंगे? दुर-दुर, इसका भी कोई माने होता है?....तुम लोगों पर चक्के की धूल उड़ाता, कीमती मोटर पर बैठ, फर्र से निकल जाऊँगा, तुम लोग मुँह फाड़े देखते रहोगे—तब न बड़े आदमी बनने का सुख है।'

'सुख जरा कम ही उठाया तो क्या हुआ?'

टूटू कभी भी बाइक से नहीं उतरता, उस पर बैठे-बैठे ही बातें करता, 'पागल हो या दिमाग खराब है?'

'हो बाबा हो, सब कोई बड़े आदमी बनो। हम लोग आदि और अकृत्रिम रूप से रह जाएँगे नरक गुलजार करने को।'

टूटू अपने वाहन की गर्जन निकालते हुए जाते-जाते बोला, 'अच्छा चलूं। सात बज कर बाइस मिनट पर एक एपाइन्टमेंट है। जर्मन कौंसिल के ऑफिस में....'

हालांकि सिर्फ जर्मन कौंसिल में ही आना-जाना हुआ है टूटू का, यह कहना भूल होगी। टूटू के पास अमेरिकन प्रचार ऑफिस के बड़े साहब के साथ चाय की दावत का निमन्त्रण रहता। टूटू जापानी ऑफिस में रात्रि-भोज, करता तो रशियन लेखक गोष्ठी के साथ थियेटर जाता। अन्तर्जातीय चलचित्र के सेक्रेटरी को बेलूड़ का मठ, दक्षिणेश्वर का मंदिर और शान्तिनिकेतन दिखाने ले जाता।

साधारण शब्दों में, जगत् में सिर्फ टूटू है, टूटू की बाइक है और टूटू के पास बहुत सारा काम है। बस, और कुछ नहीं।

फिर भी न जाने क्यों, जैसा पार्थो के लिए द्वेषभाव इनके मन में है, टूटू के लिए वैसा नहीं है। हो सकता है सोमा को, बात जरा बढ़ा कर महसूस करने की वजह से उन्होंने पार्थो को प्रतारक समझ लिया है। उनके गुस्से के ढंग को देख कर लगेगा कि सोमा को ही नहीं पार्थो ने उन सबको ठग लिया है। सबको

धोखा दिया है।

'देखना न, बदमाश हिमालय से उतरते ही रंगीन कार्ड लिए हुए दाँत निकाल कर आ खड़ा होगा।'

गुस्से से भर कर शुभेन्दु बोला।

अतिन उस अनुपस्थित आसामी के उद्देश्य से कटु-स्वरों में बोला—'आने से वही कार्ड फाड़ कर डस्टबिन में डाल दूँगा। जानते हो, साला सारा कितने आराम से घूमने गया है? फर्स्ट क्लास कमरा, बगल में सुन्दरी तरुणी साकी और इधर-उधर हितैषी गार्जियन काकू और चाची। इनके अलावा साथ में फलों की टोकरी, सन्देश का डिब्बा, काजू का टिन। फोटूके न जाने किस काम से सियालदा स्टेशन पर गया था। आ कर बताया—'देख आया तेरे पार्थो को। आहा, क्या बढ़िया अवस्था रे! जी में आया कि दौड़ कर पूछूं—किस देवता की तावीज बाँधी थी रे?'

वे मुँह टेढ़ा करते हैं।

उनका शरीर जल उठता है।

उन्हें देख कर लगता है जैसे उनके दल के एक आदमी ने विश्वास-घात करके शत्रुपक्ष में नाम लिखाया है।

शत्रुपक्ष ही तो है।

शत्रुपक्ष के अलावा और क्या है? सक्षम और अक्षम, पैसेवाला और पैसा-विहीन, हमेशा से इनके दो शिविर हैं। हमेशा से ही ये परस्पर के लिए विपक्षी हैं। एक दल का अगर कोई मौका और सुविधा पाते ही छिटक कर दूसरे दल में जा घुसता, यह दल उसे 'विश्वासघातक' कह कर ही चिह्नित करता।'

इसीलिए उनमें से एक ने घृणा से मुँह तिरछा करके कहा—'रंगीन कार्ड लेकर दाँत निकाल कर खड़ा होगा तो वह कार्ड मैं उसके सामने ही फाड़ कर डस्टबिन में डाल दूँगा।'

कहते समय शायद अतिन ने अपने को अपने आप ही समझाया कि सोमा के प्रति सहानुभूतिवश हो पार्थो पर वह इतना गुस्सा है। लेकिन क्या सचमुच इसीलिए सारा गुस्सा है? कल ही अगर अतिन की भी पार्थो की तरह सुदशा हो, तब उसे क्या पार्थो के काल्पनिक रंगीन कार्ड की तरह फाड़ कर फेंक देगा?

ऐसा नहीं हो सकता है।

अवधारित सत्य है, वैसी ही सुदशा का टिकट संग्रह होते ही अतिन भी पार्थो का स्वजातीय हो जाएगा।....अतिन भी शत्रुपक्ष में नाम लिखाएगा।

लेकिन मन ही मन सोचेगा, 'मैं तो उसकी तरह बेकार नहीं हो गया हूँ, मैं तो ठीक हूँ। मुझे जरूरत की वजह से ही यह टिकट लेना पड़ा है, नहीं तो मैं घृणा करता। दोस्तों से अलग हुआ जा रहा हूँ मैं, वह भी समयाभाव के कारण।

पुराने परिवेश को फिर से ग्रहण नहीं कर पा रहा हूँ, वह भी अभ्यास न होने के कारण। और कुछ नहीं।'

प्रवाहित काल, जिसका काम ही है अविरत तोड़-फोड़ कर नई चीज का निर्माण करना, वह सिर्फ इस आत्मप्रवंचना को देख कर हँसता है। वही काल जानता है, मनुष्य अपने को जितना ठगता है उतना और किसी को नहीं ठग सकता है।

हालाँकि टूटू लोगों की बात और है।

टूटू सदर्प और सशब्द घोषित कर रहा है—'मैं बदलना ही चाहता हूँ। यही मेरी जीवन साधना है।....मैं अपने पुराने परिवेश को पाँव से कुचलते हुए और ऊपर की मंजिल पर पहुँचना चाहता हूँ। मैं अपने इस जीवन को दोनों हाथों से पकड़ कर और अच्छी तरह से भोगना चाहता हूँ। मैं पृथ्वी का सारा रस, रंग, सारी रोशनी लूट कर अपने भण्डार में भरना चाहता हूँ।....मैं सौभाग्यवानों के दल में अपना नाम लिखाना चाहता हूँ।'

इसके लिए टूटू जहन्नुम तक में जाने को तैयार है—यह बात टूटू ने उच्च-कण्ठ से उच्चारित की थी। हिचका तक नहीं, क्योंकि टूटू प्रचलित न्याय-नीति-नियम-अनियम की परवाह नहीं करता है।

× × ×

अतएव सहसा ही एक दिन देखा गया—टूटू की भयंकर आवाज करने वाली मोटरबाइक अदृश्य हो गई है, टूटू एक चमचमाती काली एम्बेसेडर पर चढ़ कर घूम रहा है। टूटू के शरीर पर क़ीमती टेरिलिन का सूट....और चेहरे पर प्रातःकालीन सूर्य की सी उज्ज्वलता।

और जबकि भद्रा किसी भी दिन उसके कार पर नहीं चढ़ती है, तब भी, जब-तब भद्रा की समिति के दरवाजे पर आ पहुँचता टूटू—'ओ भद्रेश्वरी, कहीं जाने की जरूरत है? अगर है तो गाड़ी पर आ बैठो, जरा तुम्हें भी लिफ्ट दूँ।'

भद्रा बाहर आकर हँसती, 'ऑफर के लिए अनेक-अनेक धन्यवाद।'

'यहाँ पड़े-पड़े क्या कर रही हो? चलो न जी० टी० रोड पर मीलों दूर तक घूम आएँ।'

भद्रा मुस्कुराती आँखें उठा कर देखती, 'अहा बेचारा। आज तक एक संगिनी भी न जुटा सका।'

टूटू कार पर थप्पड़ जमा देता—'भद्रा, मेरा मिजाज मत बिगाड़ो, जो इच्छा हो सो कर सकता हूँ। जानना चाहता हूँ और कितने दिनों तक परेशान करोगी?'

'धैर्य की परीक्षा ले रही हूँ।'

'यह क्या अनन्तकाल तक लेती रहोगी ?'

'उ, हूँ! तुम्हारे सचमुच बड़े आदमी बनने तक।'

टुटू गम्भीर आवाज़ में कहता—'कार हो जाने को तुम बड़े आदमी बन जाने का लक्षण नहीं मानती हो ?'

'सिर्फ एक से नहीं! पत्नी के लिए एक और कार रहने की बात थी।'

'होगी।'

'होने दो। हो जाए।'

'वही फाइनल है न ?'

'पागल हुए हो। रुपया पैरों से कुचलने का, दोनों हाथों से लुटाने, फेंकने, फैलाने की बात हुई थी न ?'

'वह दिन भी आएगा।'

'आए! आ जाने दो।'

'इसके मतलब मेरे प्यार पर तुम्हारा विश्वास नहीं ?'

'बड़ी हल्की कविता सा सुनने में लग रहा है।'

'देखो भद्रेश्वरी! यह काम तुम ठीक नहीं कर रही हो। शास्त्रों में लिखा है, कच्ची उम्र और कच्चा रुपया, इन दोनों रासायनिक द्रव्यों के सम्मिश्रण से भयंकर गड़बड़ी हो सकती है।'

'सो वह भी तो दर्शनीय है।'

कुछ देर तक टुटू चुप रहा फिर बोला, 'अच्छा तुम्हारी आपत्ति का कारण क्या है ?'

'आपत्ति कौन कह रहा है ? सिर्फ कुछ समय रुकने की बात है।'

'वह ही क्यों ?'

'कहा न, धैर्य की परीक्षा ले रही हूँ।'

'ठीक है। बैठी-बैठी परीक्षा ही लो। मैं नहीं आऊँगा।' कह कर 'धड़ाम' से कार का दरवाजा बन्द कर, इंजन चालू कर, चला जाता।

भद्रा की तरफ पलट कर देखता तक नहीं।

दूसरे ही दिन फिर आता।

फिर कहता, 'इस कार को जितनी भी क्यों न पाप के धन की समझो, उतनी नहीं है। सिर्फ बुद्धि का खेल....'

'पाप के धन की ? यह मैंने कब कहा ?'

'तो फिर कार पर चढ़ती क्यों नहीं हो ?'

'संयम की साधना कर रही हूँ।'

'इस बुद्धूपने का कोई अर्थ है ?'

'हर बात का अर्थ होता है ?'

'इस समिति को ही जीवन का अवलम्बन बनाना चाहती हो क्या ?'

भद्रा हँसने लगती।

कहती—'जीवन क्या इतना सस्ता है कि इन कुछ अभागी लड़कियों का अवलम्बन बनेगा यह अड्डा ?'

'इसके मतलब जानबूझ कर अपने को कष्ट देना है....क्यों ?'

'यन्त्रणा असली है या नहीं, यही देखने की इच्छा है।'

'हूँ ! जैसे कुछ बदमाश लड़के मेढक के पाँव में डोरा बाँध कर मजा लेते हैं। ठीक है, यही आखिरी बार है।' कह कर कार को गरजाता वह चला जाता।

समिति के दरवाजे पर रह-रह कर हार्न बजता और समिति की सम्पादिका के बाहर आते ही कहता—'आइए भद्रेश्वरी देवी ! पृथ्वी के परमतम पवित्र कर्त्तव्य में खोई हुई हो न ?'

दोस्त लोग लेकिन उल्टी बात कहते।

कहते—'उसका व्यवहार देखा ? पहले कहता था माँ ने कहा है, 'अलग फ्लैट किराए पर ले सको तभी शादी की बात जुबान पर लाना।' सो क्या वैसी स्थिति नहीं हुई है ? एम्बेसेडर पर चढ़ कर घूमा करता है, दोनों हाथों से गोल्डफ्लेक बाँटता है, हमेशा ही हम जैसे फटआ भर बेकारों को मँहगे होटल में ले जाकर खिलाता है, और एक फ्लैट किराए पर लेकर शादी निपटा नहीं सकता है ? अब लड़की को लटका रखा है। बेचारी अभी भी मास्टरी कर रही है, ट्यूशन कर रही है। रूखा-रूखा चेहरा लिए ट्राम बस की भीड़ धकेल रही है।'

भद्रा के दुःख से और पार्थो की अमानुषिकता से और भी विचलित होते वे लोग।

पार्थो की तनख्वाह, सुना है, दो हजार हुई है, लेकिन अब उसकी महिमामय शक्ल देखने का उपाय नहीं है। अब पार्थो कलकत्ते में नहीं है। ऑफिस के मद्रास ब्राँच ने उसे लोक कर 'टॉप' पर बैठा दिया है।

अभी तक राजा का दामाद नहीं बना है, पर निश्चित् है कि बनेगा। शायद राजकन्या के उपयुक्त बनने में कुछ कसर है—उसी की साधना चल रही है।

कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र से पार्थो का नाम लगभग मिट गया है। अब कोई कटु समालोचना करने का उत्साह तक नहीं कर पाता है। बातों ही बातों में 'सूअर, दुष्ट, बेकार, नीच' कहते हुए भी हिचकते हैं आजकल।

पार्थो जैसे अब दूसरे शिविर में नहीं, दूसरे ग्रह में चला गया है।

× × ×

लेकिन सोमा नाम की वह लड़की ! उसका क्या हुआ ? दार्जिलिंग से पत्थर

के मोतियों की माला लेकर पार्थो उसके पास गया था ? उसकी दादी के लिए दार्जिलिंग के सन्तरे ? पार्थो को समय कहाँ मिला ?

दार्जिलिंग की दुकानों का जो भी चक्कर लगा—वह तो रूबी के साथ। अकेले-अकेले दुकान देखने का वक्त कहाँ मिल पाया ?

और स्वयं रूबी, दुकान झाड़ कर शौकीनी चीजें खरीदने पर भी, जैसे ही पार्थो ने एक रंगीन माला का भाव पूछा, रूबी कह उठती, 'हाउ लवली !' इसे तुम मुझे प्रेजेन्ट देने के लिए खरीद रहे हो पार्थोदा ?'

हाँ, अभी भी 'दादा' कहती चल रही है रूबी। शायद जिद् पूरी होने की सुविधा के लिए।

खैर जाने दो, लौटने वाले दिन पार्थो ने सन्तरे खरीदने की कोशिश की थी, लेकिन कोशिश हास्यकर हो गई।

संजय काकू 'हाय-हाय' कर उठे—'तुम अलहदा से क्यों खरीद रहे हो ? तुम्हारे घर के लिए तो मैंने ही यह बड़ी टोकरी खरीदी है। सौ से ज्यादा ही हैं शायद, और चाहिए ?'

क्या पार्थो कहे—'हाँ और चाहिए ! मैं अपने एक 'मोहब्बत' के घर में देने के लिए खरीद कर ले जाना चाहता हूँ।'

यह तो कहा नहीं जा सकता है।

इसीलिए कहना पड़ा—'सर्वनाश ! और क्या होगा ? आप यह सब पहले से ही खरीदे बैठे हैं, मुझे क्या पता था ?'

मन ही मन हालांकि पार्थो कहता है—'कान पकड़ता हूँ, जो फिर अगर कभी तुम लोगों के साथ घूमने आया। इस तरह के स्नेह के पाँव छूता हूँ। यह बीस दिनों एक कृतदास से कौन सी उन्नत दशा थी मेरी ?....दूसरे के रुपए पर हवाई जहाज पर चढ़ कर घूम रहा हूँ ? कोई जरूरत नहीं थी। शतजन्म तक भी दार्जिलिंग नहीं देखता तो क्या बिगड़ता ?' यह बातें घोष साहब न सुन सके।

पार्थो ने और भी कहा था।

'कलकत्ता पहुँच कर मैं न्यूमार्केट से संतरे खरीद कर सीधे सोमा के घर चला जाऊँगा। सन्तरा, पोष और ये मोटी-मोटी मटर।'

'वहाँ क्या नाना प्रकार की मालाओं का अभाव है ? कलकत्ते में क्या नहीं मिलता है ? निहायत ही विदेश जाओ तो कुछ लाना चाहिए....इतना झूठ तो बोलना पड़ेगा। कहना ही पड़ेगा दार्जिलिंग का है....!'

रणक्षेत्र में, राजनैतिक क्षेत्र में और प्रेमक्षेत्र में कपटता क्षम्य होती है।

लेकिन वही 'क्षम्य अपराध' कर ही कब पाया ? लौटते न लौटते, ऑफिस की पार्टी, मद्रास के ऑफिस से चिट्ठी आई—उसी पर सलाह परामर्श, इन्तजाम फिर तैयारी। कहाँ से न जाने दिन बीत गए और अचानक ही जैसे पार्थो ने देखा,

वह मद्रास जाने वाले हवाई जहाज पर चढ़ कर बैठा है।

और इसीलिए सोमा नामक 'प्रतीक्षा' के पास आकर पार्थो खड़ा न हो सका।

'वहाँ जाकर मैं सोमा को चिट्ठी लिखने का अवसर पाऊँगा।' पार्थो ने सोचा था।

क्योंकि दार्जिलिंग आकर यह मौका नहीं मिला था। दिन जैसे छन्दहीन बीते थे और रातें बीती थीं जाड़े की जकड़ में, और सारा दिन घूमने-फिरने की थकावट में। इसके अलावा उसे चिट्ठी लिखना आता नहीं है। घोष साहब और उनकी कन्या में असीमित उत्साह है, अदम्य इच्छा है। उन्होंने जब जो सोचा वही किया। हालांकि उन लोगों ने बहुत बार देखा है, लेकिन पार्थो जब पहली बार आया है तब उनकी भी तो एक ड्यूटी है।

हालांकि, एक स्वस्थ और सहज आदमी ने आज तक दार्जिलिंग नहीं देखा है, जैसी असम्भव घटना पर, रूबी को बार-बार आश्चर्य हुआ है।

'अतएव तुम कश्मीर भी नहीं गए हो?' रूबी ने प्रश्न पूछा था और साथ ही साथ करुण तथा दीनता भरी आवाज में बताया था—'मैं भी एक बार ही गई हूँ। बापी ने कहा है, आने वाली जुलाई में फिर जाना होगा। खूब मजा आएगा। तुम देखना पार्थोदा, हाउसबोट में रहने से बढ़ कर और कोई मजा नहीं।'

इसके मतलब कि यही समझ बैठी है कि पार्थो फिर उनका भ्रमणसंगी बनेगा।

'मेरी बला से।' पार्थो ने मन ही मन कहा था—'कश्मीर गए बगैर भी जिन्दा हूँ, पृथ्वी पर ऐसे लोगों की संख्या कुछ कम नहीं है। मैं नहीं जाऊँगा। देखूँ—तुम लोग कैसे मुझे ले जाते हो?....तुम्हारे बापी तुम्हें मेरे कन्धे पर लाद कर खुद 'मुगल जोड़ी' में घूमेंगे और इन हथिनी सी बच्ची को चराते-चराते मेरा जीवन बुझ जाए? नहीं बाबा, अब तुम्हारे चक्कर में नहीं पड़ने का। अब तुम्हारी पकड़ से निकल कर किसी तरह सोमा के साथ माला बदल लूँ तो जान बचे। तब जो करना होगा—करना। तुम लोग आश्चर्य करोगी तो उससे भी ज्यादा आश्चर्य प्रकट करते हुए मैं कहूँगा—'अरे! यह तो मेरा बहुत दिनों से तय था।'

ठीक ही तो है।

मद्रास से चिट्ठी डाल कर यही बात पक्की करनी है।....बड़ी भारी सुविधा है कि वहाँ सामने कोई पहरेदार नहीं रहेगा।

सोमा को क्या-क्या लिखेगा, यही सोचते-सोचते रास्ता पार हो गया।

जबकि पार्थो को चिट्ठी लिखना जरा भी नहीं आता है। कहीं घूमने जाने पर, पहुँचने की खबर भेजनी चाहिए इसीलिए दार्जिलिंग से भद्रा को एक पोस्ट-कार्ड डाला था। उसके बाद सोचा था माँ को एक बड़ी और अच्छी चिट्ठी लिखेगा। माँ खूब खुश होगी! जरूर, बार-बार पढ़ेंगी और पिताजी को बुला-बुला कर पढ़ कर सुनाएँगी।

माँ का वह खुश-खुश चेहरा सोच कर पार्थो को खुशी हुई थी, लेकिन ठीक-ठाक करके लिखते-लिखते, इस बीच बीच दिन बीत गए। लौटने के दो-एक दिन पहले चिट्ठी डालने से क्या फायदा ?

'अब मुझे चिट्ठी लिखने की आदत डालनी चाहिए।'

अपने नए क्वार्टर के समुद्रमुखी बरामदे में बैठा यही सोच रहा था पार्थो—उसके बाद ही न जाने कैसे अपने में खो गया पार्थो। वह भूल गया कि यहाँ क्यों बैठा है।

आकाश का गहरा नीला रंग, लगभग अंधकार सा, उसी नीली चादर पर नक्षत्रों की बूटियाँ....और जैसे कहीं कुछ नहीं।

पार्थो विस्मय के समुद्र में डूबता चला गया। उसे एकाएक लगा—मैं क्या वही पार्थो हूँ ? कुछ दिनों पहले तक जिसे भीख माँग कर सिगरेट के पैसे जुटाने पड़ते थे ? जो पार्थो रास्ते के मोड़ पर, फुटपाथ पर, उन अनेकों लड़कों के जमघट के बीच खड़े-खड़े घण्टों गप्पें हाँकता था, जानबूझ कर गालियाँ देता था, संसार को नकारता था, ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करता था—और ऐसा करने में बहादुरी समझता था। वही पार्थो हूँ मैं ? वही मैं समुद्रमुखी बरामदे के डेक चेयर पर बैठा, तारों-भरे आकाश को ताकता क़ीमती सिगरेट का टिन खोल कर, एक के बाद एक सिगरेट फूंक रहा हूँ।....मेरे चारों तरफ हर तरह के आराम के उपकरण मौजूद हैं। इस घर का मैं मालिक हूँ। है न आश्चर्यजनक बात ?

यह नक्षत्र क्या पार्थो की विह्वलता देख कर हँस रहे हैं ?

पार्थो ने गली के बीच स्थित अपने मकान के बारे में सोचने की कोशिश की, किसी हालत में भी स्पष्ट रूप से वह याद न आया।....याद न कर सका कि उसी घर के कोने की तरफ के कमरे की दीवाल पर, कीलों से टुंकी अलगंड़ी पर जो अधमैला पैजामा और गर्दन के पास से फटी बनियान लटक रही है, वह किसकी है ?

लेकिन क्या अभी तक वह लटक रही है ?

पार्थो क्या लटकते देख आया था ?

समय का हिसाब गड़बड़ाता जा रहा है....ठीक हाल ही में देखा है ऐसा याद नहीं आया, लेकिन कितने समय से झूलते देखा है, यह याद आया।....

तो फिर मैं ही वह पार्थो हूँ जिसे वही दोनों चीजें, अपने ही हाथों से साबुन से फींच कर सुखा कर पहनने योग्य कर लेना पड़ता था। शायद इतना न भी करना पड़ता। हो सकता है, उस घर के कर्तव्यनिष्ठ मालिक के कानों तक बात पहुँच जाती तो हाथों में कुछ रुपए, नए पैजामा और बनियान के लिए आ जाते। लेकिन उन तक यह खबर देते धिक्कारता था पार्थो ?

वही पार्थो क्या मर गया है ? कब मरा ? अच्छा, उसके मरने से क्या मैं सुखी हूँ ?

या हर समय ही कुछ खो जाने की वेदना से निस्तेज-सा हो रहा हूँ ?

वही पार्थो, अगर इस सुन्दर तस्वीर से सजे हुए घर का मालिक पार्थो मुखर्जी है, तो दुःखी होने को क्या बात है ?

पर दुःखी है वह ।

क्यों ?

इसके लिए क्या पार्थो को बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है ? जमा-पूंजी का डिब्बा खाली हो गया है ? वरना इस सीमाहीन आकाश के नीचे, डेक चेयर पर पड़े-पड़े सिगरेट के धुंए का रिंग बनाते हुए भी हृदय भरपूर होने की जगह कुछ खोया-खोया सा क्यों लग रहा है ? क्यों कहीं से भी थोड़ी सी शक्ति उसे नहीं मिल रही है ? 'मैं ऐसा विह्वल क्यों हो रहा हूँ ?'

कुछ देर बाद तन कर बैठा पार्थो ।

जानबूझ कर सोचने लगा, यह सुख, यह आराम, यह पद-मर्यादा, यह स्वच्छन्द स्वाधीनता, सभी कुछ तो मेरा स्वोपार्जित है । फिर क्यों, सोच-सोच कर अनुभव करना पड़ रहा है कि मैं ही पार्थो मुखर्जी हूँ ? और यह अनुभव इतना धुंधला ही क्यों है ?

कई बार जैसे पार्थो के पिताजी देखने में लगते थे । जिस वक्त बातों के बीच, तीक्ष्ण वाक्य का डंक मार कर उन्हें चुप करा देता था—तब । या जिस वक्त माँ बताने बैठती कि किन-किन मुसीबतों का समुद्र पार कर के उन्हें आना पड़ा है—तब । तभी पिताजी इसी तरह शिथिल भंगिमा बनाए हुए वहाँ से हट जाते थे ।

× × ×

फुटपाथ पर या गली के मोड़ पर, आज भी क्या वही लड़के अड्डा जमाए हुए हैं ? जिनके नाम अलहदा से सोचने में समय लगता है । वे सब मिल कर जैसे अखण्ड रूप हों ।

हो सकता है, आज भी वे अखण्ड रूप में ही विराजमान हैं, सिर्फ पार्थो की जगह खाली हो गई है ।

या खाली न रही हो ।

जगत् में कहीं क्या जगह खाली रहती है ? जो चला जाता है उसे कोई ज्यादा दिनों तक याद नहीं रखता है । वहीं खाली जगह किसी और चीज से या कोई और आकर भर देता है ।

अतएव पार्थो की बात याद रखने का दायित्व किसी पर नहीं है । उनके बाद उनके बीच जगह बनाए रखने की वासना है तो—पार्थो को पड़ोस के क्लब लाइब्रेरी में काफी रुपये का 'डोनेशन' देना पड़ेगा, पड़ोस की सार्वजनिक ...

मोटी रकम का चन्दा देना पड़ेगा। ...और पार्थो के आकर खड़े होने पर जब 'पार्थो आया है, पार्थो आया है' का गुंजन उठेगा, तब, मुस्कुराते हुए कहना पड़ेगा—'ए क्या हो रहा है ? इतने व्यस्त होने की क्या बात है ?'

लेकिन तब क्या पार्थो की वहाँ देर तक बैठने की इच्छा होगी ? विगलित विनयपूर्वक कहने की इच्छा होगी—'मैं तो तुम्ही लोगों में से एक हूँ।'

या बहुत देर तक बैठे रहने से कहीं यह न समझ जाएँ कि पार्थो नामक आदमी अलग हो गया है, इसीलिए 'काम है' कह कर जल्दी से उठ जाएगा।

शायद यही करेगा।

मोड़ के अड्डे पर जाकर खड़े होने पर भी बन्धन छिन्न-भिन्न होने की अनुभूति को छुपा न सकेगा। अगर पार्थो उस वक्त अपने सिगरेट का टिन अतिन, शुमेन्दु, शिशिर और अनुतोष के सामने बढ़ा दे तो कुण्ठित होते हुए वे लोग उठा लेंगे परन्तु कोई भी एक मुट्ठी भर उठा कर हा-हा कर के हँसेगा नहीं, या 'देखूँ जेब में क्या है' कह कर जेब नहीं टटोलेगा।

उसी बन्धन के छिन्न-भिन्न होने की बात सोच कर पार्थो के अन्दर कुछ फटने-फटने सी यंत्रणा होने लगी।

शरीर के भीतर ?

या और कहीं ?

फिर सोचा, सचमुच ही क्या अड्डा जमता है आज भी ?

× × ×

है।

अतिन, शुमेन्दु और अनुतोष ने किसी तरह जिला रखा है। अनुतोष का घर बड़ी दूर है फिर भी वह आता है।

शिशिर को आने का वक्त नहीं मिल पाता है। उसके पिता की मृत्यु हो जाने से निरुपाय होकर शरणार्थियों की एक कॉलोनी में स्कूल-मास्टरी कर रहा है।

हो सकता है, बहुत दिनों पहले इस तरह का काम लिया होता तो अब तक हैडमास्टर बन जाता शिशिर, लेकिन बाप के रहते लेता भी क्यों ? निरुपाय हुए बगैर कौन करता है कॉलोनी के स्कूल में मास्टरी ?

सुना है स्कूल का 'भविष्य' अच्छा है क्योंकि प्रचुर मात्रा में सरकारी सहायता मिलती है।

अतएव स्कूल के मास्टरों का भी 'भविष्य' है। कम से कम शिशिर खुशी-खुशी यही बता गया था।

सिर के बाल उतारने के बाद अभी भी ठीक से सिर काला नहीं हुआ था। यहाँ-वहाँ, आकाश पर नव मेघोदय की तरह आसन्न पद संचार मात्र था। उसी

सिर के नीचे शिशिर का चेहरा कैसा भरा-भरा लगा था....उसकी वह खुशी उस चेहरे से खप नहीं रही थी।

तब से शिशिर आ न सका था। दमदम के उधर कहीं स्कूल है।

दिवेन्दु ज्यादा नहीं आ पाता है। उसे बड़ी कोशिश करने पर किसी तरह एक प्राइवेट फार्म में एक क्लर्क की नौकरी मिली है। वहाँ ओवरटाइम करने की सुविधा है, इसलिए आ नहीं पाता है।

टूटू की बात तो छोड़ ही दो।

अब तो टूटू के बिना राजधानी का सारा काम ही अचल हो जाता है, रुक जाता है। इसीलिए टूटू को अक्सर ही राजधानी दौड़ना पड़ रहा है। टूटू क्या काम करता है, यह कोई नहीं समझ पाता। लेकिन सुनने में आता है कि टूटू एम० पी० क्वार्टर्स में आकर ठहरता है, मिनिस्टरों के साथ डिनर खाता है, अशोका होटल में लंच। .. चौह्वान सुना है टूटू से टेलिफोन पर बात करने लगते हैं तो फोन उतारना नहीं चाहते हैं। मोरार जी देसाई तक टूटू से सलाह माँगते हैं। प्रधान मंत्री के साथ भी टूटू एक दिन चाय पी आया था। एक ग्रुप फोटो भी है।

कुछ दोस्त कहते, टूटू चौधरी रिपोर्टर का काम कर रहा है। कोई कहता कि पंचमवाहिनी का। कोई कहता सिर्फ गप्पबाजी—सिर्फ खुशामदबाजी करता है टूटू।

सिर्फ टूटू ही स्वयं कुछ नहीं कहता है।

पूछने पर टाल जाता है। सिर्फ अचानक कह उठता 'बहुत व्यस्त हूँ भाई। मरने तक का वक्त नहीं है, चलूं।'

फिर भी टूटू के साथ इनका नाड़ी का बन्धन नहीं टूटा है। अभी भी ये लोग उसकी जेब में झप्प से हाथ डाल कर कह सकते हैं 'जेब में क्या है, छोड़ न बाबा! खूब तो कमा रहा है, हाथ झाड़ते ही पर्वत।'

टूटू भी तूफान की तरह जब तब आकर हाजिर होता। किस्से-कहानी का स्वर छिन्न-भिन्न करके शहर के रास्ते की धूल में फैले हुए रुपए की कहानी सुनाता, राजदरबार की बिल्कुल गुफानिहित गुप्त बातें सुनाता....उसके बाद कहता—'चल! चल कर चाय पी जाए,' कह कर उन्हें उसी 'सुरभि केबिन' में लेकर घुसता। सन्तु को बुला कर उसके हाथों में बिल बाबत पहले से ही कुछ रुपये खोंस, 'भयानक जरूरी एक मामला है' के चक्कर में माँफी माँगते हुए निकल जाता।

काली एम्बेसडर बदल कर एक दूधिया सफेद गाड़ी खरीदी है टूटू ने....उसमें आवाज भी कम होती है। इसीलिए अब टूटू बड़े शान्त और आभिजात्य ढंग से उसका दरवाजा बन्द करता है।

उसकी गाड़ी की आवाज ज्यों-ज्यों धीरे-धीरे गायब हो जाती, त्यों-त्यों सुरभि

केबिन के सुविख्यात ताजे कटलेट भी नरम पड़ जाते। ये लोग भी निस्तेज हो गए। उसी निस्तेज दशा में नरम कटलेट चबाते हुए दीर्घश्वास छोड़ते—'इसी को कहते हैं पत्ते के नीचे दबा भाग्य।'

भाग्य की बात ही कहते। जिद की बात नहीं कहते, कोशिश की चर्चा न करते, अथक साधना का नाम न लेते। फिर कोई शायद कहता—'लेकिन जो भी कहो, लौंडा बदला नहीं है।'

बदल जाने के लिए टूटू अथक साधना कर रहा था। अपने को हर वक्त बदलने के साँचे में ढाल रहा था, फिर भी ये लोग कहते—'बदला नहीं है।'

और पार्थो हर समय यह सोच कर आतंकित रहता था कि कहीं बदल न जाए, फिर भी इन लोगों ने बहुत पहले ही कह दिया था, 'बदल गया है। पार्थो नामक अपदार्थ बिलकुल ही बदल गया है।'

सचमुच का बदलाव फिर होता कहाँ है?

× × ×

पार्थो न किसी दिन रंगीन कार्ड लेकर आ जाए, ये लोग इसी चिन्ता में थे लेकिन पार्थो से पहले दिवेन्दु आया, जिसे किसी ने रंगीन कार्ड के साथ आएगा, सोचा तक न था।

शर्माई हँसी हँसते हुए सभी को हाथों हाथ दिवेन्दु ने एक-एक कार्ड पकड़ा दिया। शर्माते हुए कहा—'आना पड़ेगा लेकिन, जरूर आना है। दो दिन आना। बरयात्रा में तो आना ही है, बहूभात के दिन भी अवश्य ही आना।'

बहुत दिनों बाद फुर्ती से भर कर अतिन बोला—'क्यों भइया, किस गोलोक में बैठे-बैठे चुपचाप पानी पी रहे थे? हूँ! बिलकुल पूरी तैयारी करके आ पहुँचे हो? इतने दिनों तक खबर छुपाई क्यों थी बेटा?'

कातर स्वरों में दिवेन्दु बोला—'जानता न था भई, कुछ भी नहीं जानता था। किसी वक्त बुआ जी यह काण्ड कर बैठी है।'

'ओ!' शुभेन्दु बोला—'और तुम बच्चे हो जो बिना समझे बूझे ही भट टोपोर* के फन्दे में सिर की बलि चढ़ा रहे हो?'

दिवेन्दु और भी कातर हुआ—'उपाय ही क्या है बताओ? माँ नहीं है, न जाने कब बचपन से बुआ ने ही पालपोस कर बड़ा किया है और हमारी गृहस्थी की गाड़ी अकेले ही धकेल रही है। और कितने दिनों तक करेंगी?'

'यह तो सच है'—अनुतोष कड़ा व्यंग करते हुए बोला—'तुमको 'मनुष्य' बनाने के लिए और एक आदमी तो चाहिए ही। आशा करता हूँ अच्छी ही कोई मिली है।'

दिवेन्दु स्वच्छ हँसी हँस कर बोला—'जो कुछ कहना चाहता है कह ले भाई,

*बंगालियों में विवाह के मौके पर पहना जाने वाला सिर मौर।

मौका भी मिला है। लेकिन आना जरूर। न आने पर मुझे बड़ा दुःख होगा।'

द्विवेन्दु बोला—'न आने पर दुःख होगा।'

सुन कर इन्हें नया लगा। दिवेन्दु इसी तरह सजा-सँवार कर बात करना सात जन्म में भी नहीं जानता था।

उसका स्वाभाविक बात करने का ढंग है—'न आने पर मारपीट हो जाएगी, खूनखराबा हो जाएगा।'

लेकिन अब जैसे दिवेन्दु फुटपाथ छोड़ ड्राइंग रूम में जा बैठा है।

शादी करने से पहले ही बेवकूफ हो गया है, इसके मतलब हुए कि गया। जाएगा ही तो, अब तो बुआ से भी जबरदस्त गार्जियन मिलेगा। वह क्या उसे खुले मैदान में चरने देगी?

जाने दो, जो अभागा इतने दिनों के तृषित मरुभूमि में एक बूंद पानी के गिरते ही, वही पानी दूसरे के मुंह के सामने पकड़ता है, उसके बारे में अब सोचने को कुछ वक्त नहीं है। अपदार्थ है! व्यंग का पात्र है।

अनुतोष इसीलिए कह उठा—'तुम्हें कभी दुःख दे सकते हैं? दो दिन आकर चार दिन का वसूल कर लेंगे। अच्छा खिलाएगा न? या खाने बैठे तो देखा राधावल्लभी और आलूदम। सच में, इसी वजह से दावत-वावत में जाना छोड़ दिया है मैंने। देखते ही मिजाज बिगड़ जाता है।'

'नहीं-नहीं', हँस कर दिवेन्दु भरोसा दिलाता है, 'बरयात्री का खाना तो अच्छा ही मिलेगा। ससुर जी को पहले से ही धमकी दे रखी है कि बरयात्रियों के खाने में बिन्दु मात्र की त्रुटि न हो। और अपने यहाँ भी मैं यथासाध्य....'

फिर शर्मा कर हँसा दिवेन्दु।

अविन उसकी तरफ कृपापूर्वक देख कर हँसा—'खुद तो शादी-वादी कर रहा है, तेरी भांजी की खबर क्या है? सोमा की?

सोमा की।

सोमा की खबर!

दिवेन्दु अपने खुश चेहरे को झट से करुण बना कर कहता है—'सोमा की खबर अच्छी नहीं है। बेचारी बड़ी बीमार है।'

'खूब बीमार है? सोमा? क्या बीमारी है?'

'नहीं पता है भाई! डाक्टर ने तो बहुत डरा दिया है। अब स्पेशलिस्ट को दिखाएँ तो....।'

'यह बताओ, क्यों डराया है?'

'कहा है, लिक्योमिया की आशंका है।'

'तो स्पेशलिस्ट को दिखा न।'

दिवेन्दु मुँह बना कर बोला—'दिखा कहने से ही तो दिखाया नहीं जा सकता है। बहुत रुपए का खेल है।'

'बहुत अच्छे।'

अतिन गुस्से से भर कर बोला—'बहुत रुपए का खेल है इसलिए सोमा के रोग का इलाज नहीं होगा ? और तुम दाँत निकाल कर अपनी शादी की दावत देने आए हो ?'

इस अपमान से दिवेन्दु नाराज हो गया।

गुस्सेभरी आवाज में बोला—'भाँजी बीमार हो तो मामा शादी नहीं कर सकता है, यह किसी शास्त्र में है, मैं नहीं जानता हूँ अतिन।'

'जानते हो किस शास्त्र में है ? मानविक शास्त्र में। शादी करके फँस जाने के बाद तुम उनका कुछ भी न कर सकोगे।'

दिवेन्दु बुझ-सा जाता है।

मुरझाई आवाज में बोला—'लेकिन अतिन हर एक को जीवित रहने का अधिकार तो है।'

'समझा कि है, लेकिन मानवता को तो छोड़ नहीं सकते हो।'

'देखो भाई....अपना जीवन उत्सर्ग कर देने पर भी मैं उसका कितना उपकार कर सकूँगा ? जितना प्रयोजनीय है, क्या मुझे बेच डालने पर भी मिल सकेगा ? उसे चाहिए अच्छा-अच्छा खाना, कीमती दवाएँ, परिपूर्ण विश्राम, हर समय जिससे निश्चिन्त और प्रसन्न रह सके वैसा परिवेश चाहिए। मैं यह सब कहाँ से ला सकता हूँ...बताओ जरा।'

अतिन रूढता से व्यंग कर उठा—'मिलेगा जब नहीं तब पत्नी जुगाड़ कर गृहस्थी जमा कर बैठना ही ठीक है—क्यों ?'

दिवेन्दु आहत हुआ—'सोमा मेरी भाँजी है, तुम लोगों की नहीं। फिर भी तुम लोगों की उसके प्रति सहानुभूति ज्यादा है। यह तो ठीक है, तो तुम्हीं लोगों में से कोई क्यों नहीं उससे शादी कर लेते हो ? दूसरे के लिए आत्मविसर्जन का एक ज्वलंत दृष्टान्त स्थापित हो सकेगा।'

'बहुत बढ़िया !'

'इसमें बहुत बढ़िया क्या है ? ठीक ही कह रहा हूँ। उसके लिए जब तुम लोगों का सिर दर्द भी ज्यादा ही है।'

'हम सभी के पास तो बहुत रुपया है—' शुभेन्दु सिगरेट का धुंआ छोड़ता हुआ बोला, 'अतएव किसी एक से उसकी शादी होते ही जो भी जरूरतें है पूरी हो जाएँगी—है न ?'

'और नहीं तो क्या ? मैं तो अन्त में देख रहा हूँ, भाग्य के अलावा रास्ता नहीं। खैर मैं चला, और भी बहुत सी जगह जाना है। आना तुम लोग। सोमा

भी आएगी। मुलाकात होगी।'

दिवेन्दु के चले जाते ही पहले वे खूब समालोचना करते रहे, फिर न जाने कैसे इन लोगों ने भी निम्नस्वरों में कहना शुरू किया—'ठीक बात है, भाग्य के अलावा रास्ता नहीं है। वरना पार्थो इतना बेइमान कैसे हो गया? पार्थो ने अगर इतने दिनों में सोमा से शादी कर ली होती तब यह बिमारी-फिमारी कुछ न होती। हताशा, जीवन की व्यर्थता से ही जगत में नाना प्रकार की जटिल व्याधि की सृष्टि होती है।

लेकिन वह भाग्यहीन लड़का, अपने काकू की लड़की से ही कहाँ शादी कर रहा है? जो कुछ करना है कर डालो न बाबा।

× × ×

दिवेन्दु की शादी में भद्रा भी आई थी। क्योंकि भद्रा भी दिवेन्दु के मित्रों की श्रेणी में आती है। और टुटू की दूध-सी सफेद मोटर ही को फूलों से सजा कर वर-यात्रा हुई थी। सजाने का खर्च भी टुटू ने ही दिया था।

उस फूलों से सजी मोटर पर चढ़ने से पहले दिवेन्दु ने बहुत 'न-न' किया था, फिर भी अन्त तक चढ़ बैठा था और लड़की के बाप के दीन-हीन घर के सामने उसी कार को खड़ा कर उतरते वक्त उसके चेहरे पर दिव्य ज्योति झलकने लगी थी। देखने दो, ससुर के रिश्ते-नातेदारों को, उनका दामाद निहायत ही ऐसा-वैसा नहीं है।

बहूभात के दिन टुटू उनके विवाह में उपहार देने के लिए एक कीमती डिनर सेट लेकर हाजिर हुआ। देख कर भद्रा ने आँखें माथे पर चढ़ा लीं। कारण—भद्रा ही आये उपहारों की लिस्ट बना रही थी।

माथे पर चढ़ी आँखों को वहाँ से उतारे बगैर ही भद्रा बोली—'किसी भी वक्त क्या वास्तविक बुद्धि तुम्हें नहीं होगी? इनके घर में यह चीज?'

टुटू पूछ बैठा—'क्यों? ये लोग क्या खाते नहीं हैं?'

'खाते हैं। रसोई घर के एक कोने में पैकिंग कैस की लकड़ी की मेज पर या कटहल की लकड़ी के पीढ़े पर बैठ कर।'

अवहेलना भरी आवाज में टुटू बोला—'तुम्हारी बुद्धि ही क्या वास्तविक है? हमेशा ऐसा नहीं भी रह सकता है।'

'यह बात सही है, ऐसा ही नहीं रहेगा, और भी खराब होगा। कम से कम इसी बात के चान्सेस ज्यादा हैं। बल्कि एक सेट अच्छा बिस्तर दिया होता तो नव-दम्पत्ति के काम आता। यह तो उठा कर रख दिया जाएगा।'

टुटू गुस्से भरी आवाज में बोला—'सो नहीं परामर्श पहले देती तो क्या अच्छा न होता?'

भद्रा हँसने लगती—'पहले शायद मुझसे परामर्श करने आए थे?'

'परामर्श करने ? तुमसे ? क्यों ? क्यों भाई ? तुम मेरी कौन हो ? गृहिणी ? सचिव ?'

'धीरे ! लोग ताकने लगेंगे। चलो, मैं तुम्हारी कोई न सही। फिर भी आदमी जरूरत पड़ने पर बुद्धिमानों से सलाह माँगता ही है।'

आगे बढ़ कर टूटू ने उसके बढ़िया ढंग से बँधे जूड़े को जोर से पकड़ कर हिला दिया—'बुद्धिमान हूँ ? बुद्धि की तारीफ हो रही है ? जो आदमी सिर्फ भक्ष के मारे परोसा खाना न खुद खाता है, न दूसरे को खाने देता है, उसे मैं बुद्धिमान कह कर पूजूँ ? दिवेन्दु तक ने शादी कर ली और मैं....'

पास ही किसी की आवाज सुन कर टूटू चुप हो गया। टूटू और भद्रा ने एक ही साथ शादी के घर की तरफ देखा।

चूना झरती, दाँत निकाली सी, जीर्ण दीवाल। जगह-जगह फर्श पर से सीमेन्ट उखड़ गई थी, उस पर की गई निर्लज्ज चिप्पीकारी। ट्रंक के ऊपर ट्रंक चढ़ा कर बनाया गया पिरामिड, ऊँचे मचान पर गन्दे बिस्तर का स्तूप—इसी के बीच में कुछ अलग से बत्तियों का प्रबन्ध करके इसे 'शादी के घर' की संज्ञा दी गई थी। उसी सजावट के साथ ताल-मेल बैठाने को नाना प्रकार की साज-सज्जा के साथ कुछ लड़कियाँ इधर-उधर घूम रही थीं....बातें कर रही थीं। कोई किसी को बुला रहा था।

और शादी के घर की असली घटना की ओर इशारा कर रहा था उग्र कालका गन्धवाही गरम हवा का झोंका।

'इसके बाद देखने को मिलेगा, कमरे के बीच में बच्चे का झूला, कमरे के सामने गीली कथरियाँ—' भद्रा कहती है, 'उसके बाद फिर पुनरावृत्ति।'

'इससे क्या हुआ ?' टूटू उदारतापूर्वक कहता है—'यही लोग तो संसार-लीला के प्रवाह की रक्षा करते चल रहे हैं। यही लोग मनुष्य के असली इतिहास की सृष्टि कर रहे हैं। जो इतिहास कहता है, मनुष्य जन्म लेता है, परमायु का उधार चुकाता है और मर जाता है।'

'फिर भी उससे ईर्ष्या करते हो ?'

'कर रहा हूँ। आज कल विवाहित आदमी देखने मात्र से ही मुझे ईर्ष्या होती है। और तुम भद्रादेवी, कुत्ते के सामने मजबूत डोरी से लटके मांस-खण्ड की तरह बैठी हो।'

'अपूर्व तुलना की है!'

कह कर भद्रा हँसने लगी।

उसके बाद बोली—'सोमा को देखा है ?'

'एक बार देखा है।'

'कैसी लग रही है ?'

'विरहिणी, विरहिणी पैटर्न से बैठी है, देखा।'

'विरह नहीं....'

'फिर ? नव-अनुराग से ?'

'न ! बेचारी बहुत बीमार है।'

'बीमार है ? क्या बिमारी है ?'

भद्रा धीरे से बोली—'बताऊँगी। और भी एक बात तुम्हें बताऊँगी—। तुम्हारे अलावा और किसी से कह कर कोई फायदा नहीं होगा, इसीलिए तुम्हीं से कहूँगी।'

'सो कह ही डालो न।'

'नहीं, आज रहने दो।'

ढूढू ने उसके विषण्ण से चेहरे को तरफ देख कर पूछा—'क्या बात है ? तुम्हारे गधे भाई को मारते-मारते लाकर उस लड़की के पाँव के नीचे डालना है ?'

भद्रा के उस विषण्ण से चेहरे पर धीरे-धीरे कौतुक भरी हँसी छा गई—'भइया को नहीं।'

× × ×

भइया की बात भद्रा कैसे कहे ? भइया का भविष्य तो जान ही चुकी है।

भद्रा के भइया और संजय घोष की लड़की पुरवी का पासपोर्ट तैयार हो रहा है, शादी के बाद ही दोनों एक साल के लिए कनाडा चले जाएँगे। लौट कर आएगा तो पार्थो मुखर्जी कम्पनी के डाइरेक्टरों में से एक होगा। तब वही पार्थो नाम मिट जाएगा। सिर्फ रह जाएगा—पी० पी० मुखर्जी।

अभी से संजय घोष की लड़की रूबी घोष उसे पी० कह कर ही बुलाती है। हाँ पार्थोदा अब वह नहीं पुकारती है। सिर्फ कहती है—पी०। कहती है पी पी पी।

अब रूबी चोटी नहीं हिलाती है, न ही छोटे कटे बालों को नचाती फिरती है। नारियल सा एक विशाल जूड़ा बाजार से खरीद कर सिर के पीछे कसे, कुछ खरीदी भौंहें और आँखों की पलकें, आँखों और भौंहों पर चिपकाए और गुप्त रूप से लायी हुई अंग सज्जा, शरीर पर छिड़क, मोहनी नारी की भंगिमा में सोफे पर बैठी रहती है, मोटर की गद्दी पर टेक लगाए रहती है।

फिर भी हर बात पर पार्थो को 'बुद्धू' कहना नहीं छोड़ा है। कहती है नई व्यंजना के साथ, नई घटनाओं के साथ जोड़ कर।

पार्थो कर ही क्या सकता है ? 'बुद्धू नहीं है' इसका प्रमाण देने के लिए और भी हास्यकर तरह की बुद्धूपना कर बैठे ?

पार्थो के इन्हीं बुद्धूपने की बातों को माँ-बाप के सामने बता कर मन्द-मन्द

पार्थो की माँ वीणापाणि काले होते रसोई घर में संक्षिप्त-सा खाना बना कर उठते हुए लघु नि:श्वास छोड़ती हैं। सोचती हैं—'इसके मतलब हुए हमारे साथ ही सारे नियम कानून समाप्त हो गए। पुरुष इस युग में बिल्कुल ही नियम मुक्त हो गया है। गृहस्थ का लड़का—योग्य हो जाने पर गृहस्थी उससे कुछ आशा करती है, इस युग में यह बात मानना दूर, सोचना भी नहीं है।'

इधर अभागी गृहस्थी, उसी पुराने नियम के अभ्यासवश प्रत्याशा का पात्र हाथों में लिए बैठी ही रहती है और सोचती है ऐसा क्या सचमुच होता है। सचमुच ही क्या सारे नियम खत्म हो जाएँगे ?

अब रसोई में वीणापाणि का ज्यादा समय नहीं लगता। क्षितीश—आदमी यूँ ही हमेशा बूढ़े स्वभाव के थे—अब तो अचानक बहुत ज्यादा बुढ़ा गए हैं। इसीलिए दोनों वक्त जरा-सी उबली रसेदार तरकारी के अलावा और कुछ नहीं चाहिए। पति के खाने की यह दशा जहाँ हो वहाँ कौन पत्नी अपने लिए तरह-तरह के व्यंजन बनाएगी ?

एक भद्रा बचती है।

भद्रा कभी भी पाँच तरह का खाना पसन्द नहीं करती। रसोई में ज्यादा समय बिताने के लिए माँ को पहले भी डाँटती थी।

इसलिए किसके लिए बैठी-बैठी वीणापाणि पाँच किस्म का पकाए ? इसके अलावा—जितना भी क्यों न सुनें, पार्थो राजा की तरह है, सुखी है, फिर भी पार्थो के न रहने से खाना-पीना, काम-काज सभी अर्थहीन सा लगता उन्हें। पार्थो जो खाना पसन्द करता था, वही पकाने बैठतीं तो रह-रह कर आँखें भर आतीं।

मकान को लेकर जो भी कल्पनाएँ की थी वीणापाणि ने, क्रमशः वह हवा में उड़ कर विलीन हो गया। घर से अधिक आय करने की बात ही नहीं उठती है, सिर्फ प्रबल आवश्यकता है, इसीलिए जैसे-तैसे एक मंजिले में किराएदार बसा रखा है। वे लोग हर समय मकान की असुविधाओं की बात उठा कर चिल्लाते, दौड़ कर आते, अभियोग करते। उठ नहीं गए हैं लेकिन हर समय इसी बात का डर बना रहता कि कल ही न उठ जाँए।

डर और निराशा, क्षोभ और आत्माधिक्कार—इसी को अवलम्बन बना कर दो अकालवृद्ध प्रौढ़-प्रौढ़ा का रात दिन बीत रहा था।

हाँ, वीणापाणि भी बूढ़ी हुई जा रही हैं। उनकी वह किशोरी सुलभ भंगिमा, बालिकाओं सी हँसी और तरुणी सी चंचलता न जाने कहाँ खो गई है।

कौन जाने, पार्थो नाम के भरोसे जिस आशा का महल बनाया था उसने, उसके भड़भड़ा कर गिर जाने की वजह से यह दशा है या इस कारण का निवास कहीं और है ?

लेकिन यह मुँह पहली बार शिथिल होकर तब लटक गया था जब संजय घोष

हँसा करती है रूबी, और पार्थो शर्म से लाल हो उठता है। आश्चर्य करता है, रूबी के इस बेपरवाह खुल्लमखुल्ला बातें करने के ढंग पर।

इसके अर्थ हुए, पार्थो मुखर्जी को सीढ़ी लगा कर ऊँची से ऊँची मंजिल पर कितना भी चढ़ा दो, उसके मन का मध्यवर्गीयपन नहीं जाने का। हो सकता है कभी न जाए।

वरना अपने लिए कोई कीमती चीज खरीदने चलता तो उसकी आँखों के आगे, पिता जी हाथ में गाँठ बँधी जूट की थैली लिए क्यों आ जाते हैं?....और अभी भी खाने की मेज पर फलों की बहुतायत देखते ही एक सिकुड़न भरा बूढ़ा का चेहरा क्यों याद आ जाता है?

सोमा की दादी क्या अभी भी जिन्दा हैं?

भावी दामाद के लिए काकू चारों तरफ हर तरह की खबरदारी करते फिर रहे हैं। किसी-किसी दिन चाची जी जानने की चेष्टा करतीं—'इतना क्या कर रहे हो?'

अवज्ञापूर्वक काकू कहते—'यह तुम्हारी समझ में नहीं आएगा।'

एक दिन महिला सख्त हुईं।

बोलीं—'समझा देने पर समझूँगी क्यों नहीं? हालाँकि अभी समझ में नहीं आ रहा है। सिर्फ देख रही हूँ कि जितना खर्च और जितनी कोशिश तुम पार्थो के लिए कर रहे हो, उसका आधा खर्च करते या कोशिश करते तो तुम्हें तैयार....'

निःशब्द इस प्राणी के कण्ठ से अचानक महा अभियोग वाणी सुन कर संजय घोष नामक निश्चिन्त व्यक्ति विस्मित हुए, लेकिन विचलित नहीं हुए। उन्होंने वाक्य को 'अमृतम बालभाषितम' के पर्याय में डालते हुए हँस कर कहा, 'वह शायद मिलता। संजय घोष की लड़की के लिए बहुत सारे तैयार लड़के तैयार थे, लेकिन उसे क्या इस तरह हाथों की मुट्ठी में पा सकता? इस तरह आँखों के इशारे पर उठा-बैठा सकता? ये साला मेरी बातों पर उठेगा-बैठेगा। मेरी लड़की का सारी उम्र भृत्य बना रहेगा।'

'यही चाहते हो?'

'क्यों नहीं? पति पतिगिरी झाड़ने आता तो रूबी उसे बर्दाश्त करती? वह मेरी लड़की है।'

रूबी की माँ चुप हो गई।

उन्होंने यह नहीं कहा, 'वह मेरी भी लड़की है जो मैं आजीवन सहनशीलता की परीक्षा देती आ रही हूँ।' कहा नहीं—'यह बड़ा भारी अन्याय है। यह बात तुम्हारी समझ में नहीं आ रही है?'

कहने से फायदा भी क्या? कुटिल बुद्धि संजय घोष यह बात सुनेंगे?

× × ×

पार्थो की माँ वीणापाणि काले होते रसोई घर में संक्षिप्त-सा खाना बना कर उठते हुए लघु नि:श्वास छोड़ती हैं। सोचती हैं—'इसके मतलब हुए हमारे साथ ही सारे नियम कानून समाप्त हो गए। पुरुष इस युग में बिल्कुल ही नियम मुक्त हो गया है। गृहस्थ का लड़का—योग्य हो जाने पर गृहस्थी उससे कुछ आशा करती है, इस युग में यह बात मानना दूर, सोचता भी नहीं है।'

इधर अभागी गृहस्थी, उसी पुराने नियम के अभ्यासवश प्रत्याशा का पात्र हाथों में लिए बैठी ही रहती है और सोचती है ऐसा क्या सचमुच होता है। सचमुच ही क्या सारे नियम खत्म हो जाएँगे ?

अब रसोई में वीणापाणि का ज्यादा समय नहीं लगता। क्षितीश—आदमी यूँ ही हमेशा बूढ़े स्वभाव के थे—अब तो अचानक बहुत ज्यादा बूढ़ा गए हैं। इसीलिए दोनों वक्त ज़रा-सी उबली रसेदार तरकारी के अलावा और कुछ नहीं चाहिए। पति के खाने की यह दशा जहाँ हो वहाँ कौन पत्नी अपने लिए तरह-तरह के व्यंजन बनाएगी ?

एक भद्रा बचती है।

भद्रा कभी भी पाँच तरह का खाना पसन्द नहीं करती। रसोई में ज्यादा समय बिताने के लिए माँ को पहले भी डाँटती थी।

इसलिए किसके लिए बैठी-बैठी वीणापाणि पाँच किस्म का पकाए ? इसके अलावा—जितना भी क्यों न सुनें, पार्थो राजा की तरह है, सुखी है, फिर भी पार्थो के न रहने से खाना-पीना, काम-काज सभी अर्थहीन सा लगता उन्हें। पार्थो जो खाना पसन्द करता था, वही पकाने बैठती तो रह-रह कर आँखें भर आतीं।

मकान को लेकर जो भी कल्पनाएँ की थी वीणापाणि ने, क्रमशः वह हवा में उड़ कर विलीन हो गया। घर से अधिक आय करने की बात ही नहीं उठती है, सिर्फ प्रबल आवश्यकता है, इसीलिए जैसे-तैसे एक मंजिले में किराएदार बसा रखा है। वे लोग हर समय मकान की असुविधाओं की बात उठा कर चिल्लाते, दौड़ कर आते, अभियोग करते। उठ नहीं गए हैं लेकिन हर समय इसी बात का डर बना रहता कि कल ही न उठ जाँए।

डर और निराशा, क्षोभ और आत्माधिक्कार—इसी को अवलम्बन बना कर दो अकालवृद्ध प्रौढ़-प्रौढ़ा का रात दिन बीत रहा था।

हाँ, वीणापाणि भी बूढ़ी हुई जा रही है। उनकी वह किशोरी सुलभ भंगिमा, बालिकाओं सी हँसी और तरुणी सी चंचलता न जाने कहाँ खो गई है।

कौन जाने, पार्थो नाम के भरोसे जिस आशा का महल बनाया था उसने, उसके भड़भड़ा कर गिर जाने की वजह से यह दशा है या इस कारण का निवास कहीं और है ?

लेकिन यह मुँह पहली बार शिथिल होकर तब लटक गया था जब संजय घोष

ने आकर मध्ययुगीन जमीन्दारों की तरह उदार आवाज में कहा था—'तो फिर अब बहूरानी, दिन स्थिर कर लिया जाए। अब इन्तजारी नहीं की जा सकती है।'

हाँ, अभी तक वीणापाणि को संजय घोष 'बहूरानी' कह कर ही बुलाते आए हैं या 'बो ठान'। एकान्त में वह भी नहीं। आज भी वीणापाणि घर में अकेली ही थीं। फिर भी भूमिका-वूमिका नहीं की संजय घोष ने, बिल्कुल ही धनुष पर तीर चढ़ा कर छोड़ दिया था।

वीणापाणि का दिल धड़क उठा। वीणापाणि मूर्खों की तरह आँखें फाड़ कर ताकती हुई बोलीं—'किस बात के लिए दिन स्थिर करना है ?'

'किस बात का ? वाह खूब बढ़िया ! ये तो वैसा ही हुआ कि सात काण्ड रामायण सुनने के बाद पूछे—सीता किसका पिता है।'

उस क्रूर व्यंगमय मुख को देख कर वीणापाणि आश्चर्यचकित हो गई थीं। यह मुँह उन्होंने देखा न हो, ऐसा नहीं—देखा है। क्षितीश मुखर्जी की पीठ की तरफ देखा था इस मुँह ने। कभी सामना नहीं हुआ था।

वीणापाणि डर गई थीं।

वीणापाणि विह्वल हुई थीं।

वीणापाणि की आँखों में पानी आ गया था। बड़ी मुश्किलों से डबडबा आई आँखों का पानी रोकते हुए वीणापाणि बोली थीं—'मैं सचमुच ही तुम्हारी बात नहीं समझ पा रही हूँ लालाजी।'

'ओ....फोह, समझ में नहीं आ रहा है ?'

और भी ज्यादा कुटिल हँसी हँस कर कह उठे संजय घोष, 'आपका लड़का जो इस अभागे की लड़की के लिए पागल है, यह बात आप आज तक नहीं जान सकी हैं ? इसीलिए नहीं समझ पा रही हैं कि अब दिन स्थिर करना है ?'

लेकिन क्या वास्तव में वीणापाणि नहीं समझ सकी थीं ? संजय घोष के उदय होने मात्र से समझ गईं थीं। देखते ही समझ गई थीं कि आज नये उद्देश्य से नहीं आए हैं।

फिर भी 'नहीं समझ पा रही हूँ' कहा था।

क्योंकि 'समझ गई' कहतीं तो सारा दायित्व उन पर पड़ जाता, लेकिन संजय घोष की ही दूसरी खबर नई थी।

वीणापाणि का लड़का संजय घोष की लड़की के लिए पागल है, इस तरह की बात की किसी दिन कल्पना तक न की थी वीणापाणि ने। वीणापाणि तो जब-जब पार्थो के मुँह से काकू को उस लड़की के नखरे, बड़ी-चढ़ी बातें और वाचालता की व्याख्या सुनती आई थी। उसकी बात उठते ही पार्थो कहता था, 'रविश'।

फिर कब 'पागल' हुआ वह ? हुआ, और हजारों मील दूर से वही खबर वह लिख बैठा संजय घोष को ? माँ को नहीं, बहन को नहीं, बाप को भी नहीं।

लेकिन अब वीणापाणि को मालूम हो गया है, अब तो अनजान बनी नहीं रह सकती थीं। इसलिए धीरे से बोली, 'गम्भीर रहता है समझा नही जा सकता है।'

'गम्भीर लड़का है ? यह बात है ?' संजय घोष हँसने लगे—'यह बात हम लोग तो जानते ही नही।' संजय घोष की हँसी खिंची-खिंची सी सुनाई पड़ी।

वीणापाणि उस निष्ठुरता की ओर आश्चर्य से देखती रही।

लेकिन अकारण निष्ठुरता का कारण क्या है ?

इतना संजय न भी करते तो भी क्या हर्ज था ?

वह तो आसानी से कह सकता था—'वौ'ठान अभी तक के सम्पर्क में तो कोई दावा नही है। अब दोनों के लड़के-लड़की में गठबंधन करके क्यों न सम्पर्क को पक्का कर लिया जाए! समधी-समधिन! मामूली दावा नही है। कोई क्या कह सकेगा जब दो घंटे हम सामने-सामने बैठ कर बातें करेंगे ?'

इस बात में कितनी कोमलता रहती ? कितनी मधुरता के साथ यह प्रस्ताव आता और स्वीकार हो जाता।

लेकिन संजय घोष ने ऐसा नहीं किया।

अकारण निष्ठुरता दिखाई।

अकारण ही एक विश्वासी हृदय को पैरों से रौंद कर पीस डाला।

इसी पिसे हुए क्षीण कंठ से एक प्रश्न निकला—'तुम लोगों के यहाँ हम लोगों में शादी-विवाह होता भी है ?'

इस असावधान, ढीले-ढाले प्रश्न को सुन कर संजय घोष हँस दिए। बोले, 'आपके साथ मेरा विवाह नही हुआ, इसीलिए और किसी के साथ किसी का नहीं होगा, ऐसा क्यों सोचती हैं ? इस युग में इस तरह से ब्राह्मण कायस्थ का नाम उच्चारित करने पर तो बदन पर धूल डालेंगे, समझीं ?'

वीणापाणि ने ही आपत्ति उच्चारित की थी, इसीलिए शरीर पर धूल छींट कर, सिर झुकाए बैठी रहीं।

जैसे भूल गईं कि इसके बाद भी उनकी कुछ भूमिका है। संजय लाला नाम के परम आदरणीय राजअतिथि को चाय न पिलाए बगैर छोड़ा जा सकता है, ऐसा आज तक किसी दिन भी वीणापाणि ने सोचा तक न था। आज यह भी भूल गईं।

'क्षितीशदा कहाँ गए हैं ?'

उठ कर खड़े होने के बाद संजय घोष ने यह सवाल पूछा।

वीणापाणि ने सिर हिलाते हुए जताया—'पता नही।'

'तो फिर बात उन्ही के साथ पक्की कर लेनी होगी—।'

कह कर ऊँची आवाज में हँस उठे—'हालांकि वह बात की बात है! पक्का

तो जो होना है वह हो ही गया है। हिलने डुलने तक की गुंजाइश नहीं है। फिर भी सामाजिक रीतिनीति भी तो कुछ है...अच्छा। आज चलता हूँ। न हो एक बार क्षितीशदा को भेज दीजिएगा। या लड़के के बाप की मानहानि होगी लड़की के बाप के यहाँ जाने में ? अगर ऐसा होने का डर है तो बताइए, मैं ही फिर आऊँगा।'

'ऐसा क्यों होगा ?' इतनी देर बाद वीणापाणि कहती हैं—'उन्हें जाने के लिए कहूँगी।'

'अच्छी बात है।' कह कर फटाफट सीढ़ी उतर कर संजय घोष नीचे चले गए। कार निकल जाने की गर्जना सुनाई पड़ी। नियमित नियम पालन होने में बाधा पहुँची।

वीणापाणि को याद न रहा कि पीछे-पीछे चल कर कार के दरवाजे तक छोड़ आना भी कर्तव्य है। उसी तरह शिथिल सी बैठी रह गईं।

इससे पहले कभी वीणापाणि में एनर्जी का ऐसा अभाव दिखाई पड़ा था ? उसी दिन से क्या अचानक बूढ़ी होने लगी थी वीणापाणि ?

उसी शिथिल से बैठे रहने के सूत्र से ही मुँह की पेशियाँ तक शिथिल होना शुरू हो गईं। इसीलिए बूढ़ों की तरह, मन ही मन लगातार बोला करती हैं। 'समझ गई हूँ—इस अकारण निष्ठुरता का कारण मैं समझ गई हूँ। सीधे प्रस्ताव करते तो तुम्हारा मान घट जाता। क्योंकि तुम तो जानते ही हो, ब्राह्मण-कायस्थ का सवाल उठता ही।....इसीलिये तुम इस तरह से बातें कह गए जैसे अपनी खरीदी चीज को इस्तेमाल करने के पहले एक बार बता गए। जैसे तुम कन्यापक्ष नहीं, मालिक हो। जैसे लोग अपनी खरीदी चीज के मालिक होते हैं।'

'मेरा लड़का, तुम्हारे घर जाकर अपने हृदय का द्वार खोल कर, निश्चिन्त होता है, यहाँ तक कहने से बाज न आए तुम।....तुम्हें इसी से खुशी हुई।....और एक समय तुम मुझसे ममता करते थे, स्नेह करते थे। अब समझी हूँ—सभी छल था। तुम सिर्फ मौका ढूँढते थे। मेरा रूप, मेरा हँसना, बातें और, और तुम्हारे प्रति मेरा खिचाव, तुम्हें मेरे प्रति आकर्षित करता था। इसीलिए तुम ममता का छद्मवेश धारण कर मेरे पास आते थे। मुझे पसन्द करते थे और उसी अच्छे लगने को उपभोग करने के लिए सहानुभूति दिखाते थे।....उसके बाद तुम्हारा आकर्षण दूसरी जगह आश्रय पाने लगा। अपने को परितृप्त करने के लिए मुझे नाना प्रकार से मूल्य देकर खरीदने की जगह तुमने लड़की को परितृप्त करने के लिए मेरे लड़के को, तुमने ऊँचे दामों से खरीद लिया।—यह तुमने समझ लिया था कि उसी को खरीद सकते हो।....इस वीणापाणि नाम की असार महिला के सारहीन लड़के को।'

'और मूर्ख, बुद्धिहीन मैं बैठी-बैठी सोच रही हूँ कि सारा दाम तुम मेरे ही

लिए दे रहे हो !...अच्छा हुआ, ठीक ही हुआ है। मेरी तरह मूर्ख और नीतिहीन महिला के उपयुक्त ही सब हुआ है। लेकिन....फिर भी, तुम इतने निष्ठुर नहीं भी हो सकते थे। तुम्हारी छलना का मुखौटा न खुलता तो क्या बिगड़ता ?...मैं तो तुम्हारे हाथों बिकी बैठी थी....फिर क्यों तुमने मुझे फुटबॉल की गेंद की तरह 'शूट' करके उछाल दिया ?....तुम तो एक अभिनेता हो। मेरे पति के साथ दोस्ती का त्रुटिहीन अभिनय करते आए आज तक....यह तो मैंने देखा है....। न हो इस बार वैसा ही त्रुटिहीन अभिनय मेरे साथ करते।'

इसी बात का जाल, वीणापाणि, आजकल रात दिन बुना करती। शारीरिक सौन्दर्य बनाए रहने के लिए, इस अभाव भरी गृहस्थी में, जितनी मेहनत वह करती थी, वह भूल गई। इसीलिए वीणापाणि नाम की लाडली महिला द्रुतगति से बूढ़ी होने लगीं।

फिर भी क्लान्त हो गए मन को खींच-खाँच कर शादी के नाटक की तैयारी करने लगी।

पार्थो मद्रास से कुछ दिनों की छुट्टी लेकर चला आएगा, फिर शादी कर बहू को साथ लेकर आकाश में उड़ेगा।

'वही उनका हनीमून होगा....' हँस-हँस कर कह गए हैं संजय घोष।

× × ×

फुटपाथ के अड्डे में भी यह बात उठी। बहुत दिनों बाद उस दिन शिशिर आया था। उसे ही अतिन ने खबर दी।

कहा—'सुना है न ? हमारे पार्थो बाबू हनीमून मनाने कनाडा जा रहे हैं।'

चौंक पड़ा शिशिर—'शादी हो गई ?'

'नहीं, अभी नहीं हुई है। अगले हफ्ते होगी शायद। लेकिन इस गरीब मोहल्ले में रौशनचौकी नहीं बैठेगी भइया। बड़े आदमी के मोहल्ले में बड़ी स्कूल बिल्डिंग किराये पर ली गई है। स्कूल के खेल के मैदान में पन्डाल खड़ा करके भोज की व्यवस्था है। सब कुछ कन्या के पिता के खर्चे से। यानी 'शादी या बहू-भात के नाम से कुछ भी अलहदा नहीं है। असल में शादी होगी रजिस्ट्रेशन ऑफिस में जाकर....यह धूमधाम होगा वर-कन्या को रिसेप्शन देने के लिए।'

'तुझे इतना सब किसने बताया ? लौंडा आया है ?'

'पागल हो क्या ? वह तो शादी के दो एक दिन पहले आकर एयरपोर्ट पर उतरेगा। भावी-पत्नी और उसी के नाते-रिश्तेदार जाएँगे लाने। शायद ससुराल में ही उतरे....वहाँ बैठ कर उसके माँ-बाप छत की बल्लियाँ गिनेंगे।'

शिशिर बोला—'धत्, यह तो गुस्से की वजह से बढ़ा कर बोल रहा है तू।'

'मुझे इससे क्या लाभ होगा ?'

'पार्थो का इस कदर पतन होगा, किसी ने नहीं सोचा था।' साँस छोड़ कर

शुभेन्दु बोला—'दिवेन्दु तक की शादी में घर यात्रा की दावत खा आया और पार्थो के बड़े आदमी वाले ससुराल में....।'

'ससुराल ? काकू का घर कहो....।' कह कर अतिन हा हा कर के हँसने लगा।

'चलो, बहुत दिनों से सुरभि केबिन में नहीं गए....।' शिशिर बोला।

'कुछ लाए हो क्या ?'

शर्माई हँसी हँस कर शिशिर बोला—'मामूली सा, सोचा था एक खुशखबरी देने जा रहा हूँ....सो आते ही पार्थो की खबर....।'

'क्यों बाबा, तुम क्या खुशखबरी लाए हो ?'

ये लोग शिशिर को घेर लेते हैं, 'जेब में रंगीन चिट्ठी-उट्ठी है क्या ?'

'अरे नहीं नहीं, इतना आगे नहीं बढ़ा हूँ। फिर भी कल बात पक्की हो गई इसीलिए....।'

'ओ....ह ! तो तुम भी फिसल गए चाँद ?'

'फिसलूंगा क्यों भइया, मैंने क्या पार्थो की तरह बड़ा आदमी ससुर फँसाया है ?' शिशिर शरमा कर हँसते हुए बोला—'माँ-बाप मर चुके हैं लड़की के, चाचा के यहाँ रहती है। वहीं एक लड़कियों के स्कूल में टीचरी करती है। तनख्वाह कोई खास बुरी नहीं है....जैसे-तैसे चल जाएगा....और क्या ?'

'जाओ भइया। एक-एक करके सभी दीए बुझ आएँगे—मैं ही सिर्फ जागता रहूँगा रात्रि-प्रहर में।'

'आ....हा ! तेरे दिन क्या नहीं आएँगे ?'

'रहने दे ! तुम लोगों के इस 'दिन' आने का मैं स्वागत नहीं कर सकता। अभी तो दिवेन्दु की 'गया यात्रा' हुई है। सुना है बीबी को एनीमिया है, इसीलिए डाक्टर के यहाँ दौड़ रहा है....उस दिन मिला था।'

'उसकी बीबी तो दुबले पैटर्न की थी ही....'

और भी कुछ कहने जा रहा था शिशिर, गर्दन के पास मोटर आकर खड़ी हुई। टूटू उतरा। व जाने कैसे क्लान्त से स्वरों में बोला—'क्यों भइया....नरक गुलजार किया जा रहा है ?'

'गुलजार कहाँ हो पा रहा है ?' अतिन बोल उठा—'नरक के राजा का तो इतनी देर में आविर्भाव हुआ है। सो....अचानक तुम ? आज सूरज किधर से निकला था ? मोहल्ले में तो तुम दिखाई ही नहीं पड़ते हो।'

टूटू कार को टेक लगाए खड़ा खड़ा, कार की चाभी नचाते हुए निस्तेज आवाज में बोला—'न, आज मेरा मन-मिजाज अच्छा नहीं है।'

'क्यों, क्या हुआ ? दिल्ली की गद्दी पर....'

'दुर, बेकार की बातें बन्द कर। अभी एक कार एक्सीडेन्ट देख कर मिजाज-

मिजाज बिगड़ गया है।'

'देख कर या करके प्रभु ?' शुभेन्दु बोला—'दबा कर भाग आए हो क्या ?'

'अरे नहीं, नहीं। असल में मामला क्या है जानते हो ? आदमी मेरा परिचित है। शेयर मार्केट मे बड़े चक्कर लगाता है, खूब नाक ऊँची है। हाल ही में यह एक बड़ी मोटर खरीदने की वजह से नाक आसमान से छू रही थी।....लोगों की तरफ आँख उठा कर नहीं देखता था।....देख-देख कर मन ही मन कहा करता था—हरामजादे की यह गाड़ी दुमंजिली बस के नीचे कुचल जाए !....कहने पर विश्वास नहीं करोगे, कल भी सोचा था, और आज ही....'

कहते हुए टूटू अचानक चुप हो गया।

चाभी का गुच्छा और भी जोरों से उछालने लगा। ये तीनों एक साथ चौंक पड़े—'सचमुच दुमंजिली बस के नीचे....'

'नहीं, दुमंजिली बस नहीं, दैत्य की लॉरी से टकरा कर ...' क्षुब्ध हँसी हँस कर टूटू बोला—'सिर्फ मोटर ही नहीं कुचली है, वह आदमी भी....'

'यही उसके भाग्य में था।'

ये लोग सान्त्वना की आवाज में बोले—'सचमुच ही तो तेरी इच्छाशक्ति के प्रभाव से मरा नहीं है वह।'

'मरा नहीं है फिर भी अपने को ही खूनी-खूनी सा लग रहा है।'

'हु....ह।'

'नहीं रे, जब से देखा है, मन से चिन्ता दूर ही नहीं हो रही है।' हॉस्पिटल में पहुँचा कर आ रहा हूँ। जाते-जाते ही रास्ते में फिनिश हो गया साला।'

'तू अस्पताल ले गया था ?'

उदास हो कर टूटू बोला—'आँखों के सामने देख कर....वह साला मेरा पिछले जन्म का शत्रु रहा होगा, वरना देखो न—लग रहा है बैरागी बन जाऊँ। साला, बड़ा आदमी बन कर होगा क्या ? एक ही मिनट में तो सब फुर्र। काले बाजार और चोरी के कारोबार का रुपया कहाँ फेंक-फैला कर रख गया, उसके उत्तराधिकारी शायद जान ही न पाएँगे।'

'छोड़ दे, इन बातों से कोई फायदा नहीं।'

ये लोग फिर सान्त्वना देते हैं—'मृत्यु का दृश्य देख कर हर किसी का मन बैरागी हो जाने का करता है। चल जरा चाय पी जाए।'

'नहीं भई, नहीं। नहाए धोए बगैर....' टूटू अन्यमनस्क सा बोला—'वह आदमी सिर्फ खुद ही कुचल कर नहीं मरा, मुझे भी कुचल कर रख गया।'

शुभेन्दु बोल उठा—'अरे, तू तो ऐसा नर्वस नहीं था ? हम लोगों में से तू ही तो बहादुर था....इसके अलावा तू ने तो दबाया नहीं है !'

भूमिका उन्हीं की है और यह आयोजन उनके परिचित जगत् में था।

घर में दो-चार जने निकट आत्मीय आकर रहेंगे, वीणापाणि की यह निश्चित् धारणा थी। इसीलिए घर की सफाई कर रही थी। बिस्तर की मलिनता को आवरण देने के लिए साबुन से फोंच-फोच कर मर रही थी और दो-चार भारी पुरानी तकिओं को फाड़ कर उसी रुई से छोटी-छोटी बहुत सारी तकिए बना रही थी। इतना करते-करते, धीरे-धीरे मन में, उत्सव-उत्सव भाव फूट रहा था और साथ ही लड़की के विरुद्ध मुँह भी खुल रहा था। बहुत दिनों बाद जैसे मकान में आवाज सुनाई पड़ रही थी।

इतनी बड़ी एक लड़की के रहते, वीणापाणि को अकेले ही सब करना पड़ रहा है, यह बात बीच-बीच में वीणापाणि घोषणा कर रही थी।

उसी घोषणा पर एक दिन एक निर्मम घोषणा कर बैठी भद्रा—'लड़के की शादी के लिए तो खटते-खटते मरी जा रही हो, लेकिन माँ यह खटना बेकार ही गया!'

वीणापाणि चौंकी।

वीणापाणि का चेहरा उतर गया, हालांकि उसी चेहरे पर एक झलक आशा की बिजली कौंध गई।

बोलीं—'क्यों ? शादी नहीं होगी ?'

'शादी क्यों नहीं होगी ? समारोह के साथ ही होगी। लेकिन उसमें तुम्हारा कोई रोल नहीं रहेगा। तुम्हारे समधी साहब अकेले ही दोनों तरफ का भार संभाल रहे हैं। इसीलिए पूछने के लिए भेजा है कि तुम्हारे कितने रिश्तेदार हैं, कितने जनों के लिए इन्तजाम रखें। और उसी शादी के घर का पता भेज दिया है, जिससे कि निमन्त्रण-पत्र में पता छपा सको।'

भद्रा ने हाथ में लिया कागज आगे बढ़ा दिया।

वीणापाणि ने लेने के लिए हाथ नहीं बढ़ाया। रुद्धकंठ से बोली—'यह बात हम लोग मान लेंगे ?'

'लेना न लेना तुम्हारी मर्जी।' भद्रा लापरवाही से बोली—'कहला सकती हो कि हमारे कोई रिश्तेदार नहीं है।'

वीणापाणि रुद्धकंठ छोड़ क्रुद्धकंठ से बोलीं—'बड़ी अक्ल की बात हुई। रिश्ते-नातेदारों के सामने मुँह कैसे दिखाऊँगी ?'

'ओ....ह, यह बात तो है। तब देखो, सोच समझ कर मुँह दिखाने के उपयुक्त कौन सी परिस्थिति की सृष्टि कर सकती हो ?' कह कर हँस उठी भद्रा।

वीणापाणि बोलीं—'क्या कर सकती हूँ यह बात पार्थो के आने पर ही तय होगी। पार्थो किसी हालत में इस अपमानजनक प्रस्ताव को नहीं मानेगा।'

'न माने तो ही अच्छा है।'

'मैंने खुद दबाया होता तो यह सब बातें नहीं सोचता रे....उसे सिर्फ एक्सीडेन्ट सोच कर मानो संतोष-सा हो लग रहा है—मेरे मानसिक हिंसा-भाव ने एक आदमी को मार डाला। इसके मतलब मैं खूनी हूँ।'

टूटू को इस तरह की बातें करते किसी ने नहीं सुना था, इसीलिए दुःखी हुए। आबोहवा हल्की करने के लिए अतिन बोला—'तेरी इच्छा-शक्ति का प्रभाव अगर इतना प्रबल है तो जरा इच्छा प्रयोग करके मुझे एक 'कुर्सी' दिला दे न, प्रभु।'

'मज़ाक बन्द कर....जा रहा हूँ।'

'चाय नहीं पीएगा? शिशिर पिला रहा था—उसकी शादी की खबर....।'

'शिशिर की? वाह, बढ़िया।'

टूटू कार में बैठ कर, उसे स्टार्ट करता है।

'क्या हुआ? गुस्सा हो गया क्या?'

शिशिर आगे बढ़ आया।

'नहीं, गुस्सा कैसा?' कह कर टूटू चला गया।

'लौंडा इतना सेंटीमेन्टल है यह तो पता ही नहीं था।' कह कर धीरे-धीरे वे लोग सुरभि केबिन की तरफ बढ़ने लगे।

टूटू स्वर को बेसुरा कर गया।

यहाँ तक कि शिशिर को भी लग रहा है कि सचमुच जीवन के कोई माने नहीं।

फिर भी इस माने-विहीन चीज में ही चीज ढूँढते चल रहे हैं हम (अगर चीज कही जाए तो। लेकिन इसके अलावा कहा ही क्या जा सकता है?) पैदा क्यों हुए हैं, नहीं मालूम। क्यों और कुछ प्राणियों को जन्म देकर जाऊँगा, यह भी नहीं पता....न जाने क्यों सारी चीज को बहुत कीमती समझ कर पकड़े हुए समुद्र तक धकेल ले जाते हुए, दिनों का ऋण चुकाते हैं।

बिल्कुल निरर्थक एक चीज।

सुरभि केबिन में बैठे वे टूटू की ही बातें करते। कहते—'लेकिन उसकी शैरनी का क्या हुआ? पैसा तो वह कमा रहा है, शादी क्यों नहीं कर रहा है?'

'खुदा जानें। उसे तो ज़ोर-शोर से समिति चलाते देख रहा हूँ।'

आलोचना चलती रही और अन्त तक यही तय हुआ—सब ही जब निरर्थक है तब जितने दिन हो सके इस 'जीवन' नामक वस्तु का भोग कर लेना चाहिए। इस भोग के जरिए तब भी वह चीज जैसे छुई जा सकती है....चाहे दुर्भोग हो चाहे दुःख-भोग।

× × ×

पार्थो की माँ अपने क्लान्त मन को खींच-खींच कर शादी के नाटक का आयोजन कर रही थी, क्योंकि उन्होंने सोचा था—नाटक के इस आयोजन की

भूमिका उन्ही की है और यह आयोजन उनके परिचित जगत् में था।

घर में दो-चार जने निकट आत्मीय आकर रहेंगे, वीणापाणि की यह निश्चित् धारणा थी। इसीलिए घर की सफाई कर रही थी। बिस्तर की मलिनता को आवरण देने के लिए साबुन से फोच-फीच कर मर रही थीं और दो-चार भारी पुरानी तकिओं को फाड़ कर उसी रुई से छोटी-छोटी बहुत सारी तकिए बना रही थी। इतना करते-करते, धीरे-धीरे मन में, उत्सव-उत्सव भाव फूट रहा था और साथ ही लड़की के विरुद्ध मुँह भी खुल रहा था। बहुत दिनों बाद जैसे मकान में आवाज सुनाई पड़ रही थी।

इतनी बड़ी एक लड़की के रहते, वीणापाणि को अकेले ही सब करना पड़ रहा है, यह बात बीच-बीच में वीणापाणि घोषणा कर रही थी।

उसी घोषणा पर एक दिन एक निर्मम घोषणा कर बैठी भद्रा—'लड़के की शादी के लिए तो खटते-खटते मरी जा रही हो, लेकिन माँ यह खटना बेकार ही गया!'

वीणापाणि चौंकी।

वीणापाणि का चेहरा उतर गया, हालांकि उसी चेहरे पर एक झलक आशा की बिजली कौंध गई।

बोलीं—'क्यों ? शादी नही होगी ?'

'शादी क्यों नहीं होगी ? समारोह के साथ ही होगी। लेकिन उसमें तुम्हारा कोई रोल नही रहेगा। तुम्हारे समधी साहब अकेले ही दोनों तरफ का भार संभाल रहे हैं। इसीलिए पूछने के लिए भेजा है कि तुम्हारे कितने रिश्तेदार हैं, कितने जनों के लिए इन्तजाम रखें। और उसी शादी के घर का पता भेज दिया है, जिससे कि निमन्त्रण-पत्र में पता छपा सको।'

भद्रा ने हाथ में लिया कागज आगे बढ़ा दिया।

वीणापाणि ने लेने के लिए हाथ नहीं बढ़ाया। रुद्धकंठ से बोली—'यह बात हम लोग मान लेंगे ?'

'लेना न लेना तुम्हारी मर्जी।' भद्रा लापरवाही से बोली—'कहला सकती हो कि हमारे कोई रिश्तेदार नही है।'

वीणापाणि रुद्धकंठ छोड़ क्रुद्धकंठ से बोली—'बड़ी अक्ल की बात हुई। रिश्ते-नातेदारो के सामने मुँह कैसे दिखाऊँगी ?'

'ओ....ह, यह बात तो है। तब देखो, सोच समझ कर मुँह दिखाने के उपयुक्त कौन सी परिस्थिति की सृष्टि कर सकती हो ?' कह कर हँस उठी भद्रा।

वीणापाणि बोली—'क्या कर सकती हूँ यह बात पार्थो के आने पर ही तय होगी। पार्थो किसी हालत में इस अपमानजनक प्रस्ताव को नही मानेगा।'

'न माने तो ही अच्छा है।'

'वे लोग चाहे जो करें, हम लोग इस टूटी झोंपड़ी में ही बहू-भात करेंगे।'
वीणापाणि यह बात दृढ़ स्वरों में घोषित करती है।

लेकिन भद्रा पेट की लड़की होकर भी निष्ठुरता में कम नहीं। और जोर से हँस कर बोली, 'किसको लेकर? वहाँ के रिसेप्शन के बाद ही तो भइया प्लेन में चढ़ बैठेगा।'

'पार्थो दूसरे ही दिन चला जाएगा?'

'ऐसी ही तो बात है।'

वीणापाणि को लगा कि यह लड़की उनकी बहुत बड़ी शत्रु है। माँ को कष्ट देने के लिए बना बना कर बातें कह रही है। वीणापाणि कहती हैं—'अच्छा, पार्थो आए तो।'

वीणापाणि के गले की आवाज में न जाने कैसी आशा थी जैसे वह विश्वास करने को तैयार नहीं कि पार्थो नाम की उनकी बहुत बड़ी सम्पत्ति उनके अनजाने में ही बिल्कुल हाथों से निकल गयी है।

× × ×

लेकिन क्या सचमुच हाथों से निकल गयी है? तो फिर पार्थो नामक वह अफसर आदमी, तब इतना दुःखी-दुःखी क्यों लग रहा था जिस समय वह कलकत्ता आने की तैयारी कर रहा था?

अपने मन में सिर हिला-हिला कर कह रहा था, 'यह मैं नहीं होने दूँगा। मेरे कितने दोस्त, मेरे माँ-बाप के इतने रिश्तेदार सभी संजय घोष के यहाँ जाकर दावत खा आएँगे?' हम लोगों का मान सम्मान नहीं है? इस आदमी ने सोचा क्या है?....क्रमशः ही मुझे खा लेना चाहता है। नहीं नहीं, मैं कलकत्ते जाते ही यह बात बताऊँगा उन्हें, आप जो करना चाहिए, करिए, आपको मेरे माँ-बाप की 'मदद' करने की जरूरत नहीं।'

इस 'मदद' शब्द का प्रयोग संजय घोष ने चिट्ठी में किया था। लिखा था.... 'इस व्यवस्था से क्षितीशदा बहुतेरे हंगामों से बच जाएँगे। उनकी यह 'मदद' कर सकूँगा सोच कर मैं खुश हो रहा हूँ।'

खुश तो होंगे ही—पार्थो सोचता है, इसी से तो तुम्हारा अहं चरितार्थ होगा। लेकिन क्यों? क्यों—सुनूँ तो? मेरे पिताजी ने तुमसे मदद माँगी थी? फिर क्यों तुम मेरे गरीब पिता का अपमान करोगे? किस अधिकार से? 'गरीब' शब्द को सोच कर पार्थो और भी दुःखी हुआ।

पार्थो बड़ा आदमी बना जा रहा है पर उसके पिता गरीब ही रह गए। क्योंकि इतनी तनख्वाह पाने पर भी, पार्थो अपने पिता को ज्यादा रुपए नहीं भेज पाता। हर महीने नाना प्रकार के खर्च सामने आ जाते हैं। स्टेटस् बढ़ाने से ही मेनटेन करने का दायित्व बढ़ता है।

बल्कि जितने दिनों तक घर पर रह कर काम किया है, माँ के हाथों में तन्ख्वाह के रुपए रख सका था। लेकिन अब ?

पार्थो अपना सामना अपने आप करता है—'लेकिन अब ? अब तुम अपने माँ-बाप को क्या दे रहे हो ? मुट्ठी भर भीख ? सिर्फ मुट्ठी भर भीख ! तुम्हारे उपार्जन का एक चतुर्थांश। उसके बाद ? इस बड़े आदमी के दामाद बन कर जब उसकी लड़की को पालने बैठोगे—तब ? तब शायद एक छेदाम भी न दे सकोगे ? नीच ! लफंगा ! बेईमान ! चोर !'

निर्जन कमरे में पार्थो जोर-जोर से कहता है।

जैसे ड्राइंगरूम छोड़ कर पार्थो अचानक फुटपाथ पर उतर आया है। इसी-लिए जानबूझ कर जबान बिगाड़ रहा है।

हाथ का काम रोक कर पार्थो बड़ी देर चुप बैठा रहा। फिर धीरे-धीरे ठीक करने लगा अपने जरूरी सामान, कागज-पत्र।

और उसके बाद ही संकल्प किया—'घर जाते ही मैं संजय घोष की सारी बहादुरी-मार्का व्यवस्था बन्द करवा दूंगा। कहूँगा, मेरे दोस्त, मेरे रिश्तेदार, हमारे घर आने पर ही खुश होंगे।'

× × ×

पार्थो ने ये बातें सोची थीं, त्रुटिहीन ढंग से कंठस्थ कर ली थीं लेकिन आकर देखा—गंगा जी का पानी बड़ी दूर तक फैल चुका है।

स्कूल बिल्डिंग किराए पर ली जा चुकी है, पन्डाल के लिए बाँस बँध चुके हैं। मिठाई का आर्डर कृष्णनगर और शक्तिगढ़ भेजा जा चुका है।

'संजय घोष का हाथ दूध में तो पड़ता नहीं है, सारा काम पानी से ही करते हैं, इसीलिये इतना कर भी लेते हैं', बहुत लोग ये बात कह रहे हैं, लेकिन यही लोग सब कुछ देख-सुन कर विगलित भी हो रहे हैं।—आजकल छोटे आदमियों के भाग्य में मिठाई कहाँ बदी है ?—संजय घोष पहले की तरह सब कर रहे हैं।

इस आयोजन को देखने के बाद पार्थो कैसे कहे कि तुम्हारा मामला तुम्हारा है, हमारा मामला हमारा। इन्होंने तो स्वेच्छा से दोनों घरों का काम अपने कन्धों पर उठा लिया है।

× × ×

पार्थो को दमदम से रिसीव कर वे लोग सीधे अपने घर ले आए थे। नहाना-धोना, खाना-पीना निपटा, तब ले गए माँ-बाप से मिलवाने।

बेचारी वीणापाणि और क्षितीश मुखर्जी क्या कम उत्कण्ठित हैं ? यह क्या संजय घोष अनुभव नहीं कर रहे हैं ? और इसीलिए तो उन्हें निमन्त्रित कर रखा था....एक साथ खाया पिया जा सकेगा। अब वहीं निमन्त्रण ये लोग स्वीकार न करें तो कोई क्या करे ? मन्ना ने सुना तो मुँह पर ही कह दिया था—'अपने

लड़के को दूसरे के घर में चोरों-की-तरह घूमते देखने में कौन सा मजा है चाचा ?'

भद्रा की यह विनय-रहित बात सुन कर पार्थो का सिर शर्म से कट सा गया। पार्थो ने रास्ते में ही यह बात सुनाई—क्योंकि दमदम से वह पहले अपने घर हो जाना चाहता था।...लेकिन भद्रा को इस स्पष्टता के बाद ज्यादा दबाव नहीं डाल सका।

× × ×

दोपहर बिता कर शाम को कार पर चढ़ कर पार्थो अपने घर आया और अचानक जैसे अवाक् होकर देखा—घर कैसा अंधेरा-अंधेरा सा और छोटा हो गया है। पहले भी इतना ही छोटा था ? ऐसा ही अंधकारमय ?

इस घर में रूबी आकर रहेगी ?

अवास्तविक कल्पना।

इस घर में दोस्तों को बुला कर भोज खिलाने की कल्पना और भी अवास्तविक है।

लेकिन पार्थो न सोच सका, ऐसा हुआ कैसे ? खिड़की, दरवाजे से शुरू करके आँगन की वह हौदिया तक एक तरफ से छोटी हो गयी है। तब क्या सब छोटा ही था और मैं अभी तक अनुभव नहीं कर सका था ?

और ठीक इसी समय सोमा नाम की लड़की एक आदमी के लिए यही बात सोच रही थी !

इतना छोटा कैसे हो गया ?

एक बार मिलने जैसी उदारता भी खत्म हो गई ?....क्या वह पहले भी छोटा ही था, सिर्फ मैं अपने अनुभव से जान नहीं सकी थी ?

क्योंकि मैं मूर्ख हूँ, अबोध हूँ।

आश्चर्य है ! पहले कितना बड़ा लगता था।

उसने क्या सोचा है ?

देखते ही क्या मैं रो-धो कर उसे अप्रस्तुत कर दूंगी ? या उसकी बीबी से ईर्ष्या करूँगी ?

छिः छिः, कितने शर्म की बात है !

शादी में परिचित के नाते एक निमन्त्रण पत्र देने तक की सौजन्यता नहीं निभाई। मनुष्य है या ईंट-पत्थर ?

जबकि पार्थो सोच रहा था....शादी का निमन्त्रण-पत्र लेकर उसके सामने जाकर मैं खड़ा कैसे होऊँगा ? मैं मनुष्य हूँ या ईंट-पत्थर ? मैं किस चक्रव्यूह में पड़ कर इस हालत में आ पहुँचा हूँ—यह बात क्या उसे समझा सकूँगा ? समझाने जाना धृष्टता न होगी ? अगर वह कह बैठे—'तुमसे कैफियत कौन माँग रहा है ?' अगर कहे 'तुम तो शिशु नहीं हो ?' मैं क्या उत्तर दूंगा ? नहीं-नहीं, शादी में

निमन्त्रित करने के बहाने में उसका अपमान नहीं कर सकता।

फिर भी सोमा को फिर से देख न पाएगा सोच कर लगातार उसके दिल में भयानक दर्द हो रहा था। सोमा के साथ विश्वासघात कर रहा हूँ सोच कर अपने ऊपर घृणा होने लगी। उसे सोमा की खबर तक भी नहीं मिल रही है।

सिर्फ एक बार भद्रा से पूछा था—'तेरी उस सहेली के क्या हाल-चाल हैं? उसी सोमा के?'

भद्रा ने तीव्र-तीक्ष्ण व्यंग-दृष्टि-बाण छोड़ते हुए कहा था—'किसके सूत्र से कौन किसका मित्र है....यह भी शायद भइया तुम भूल बैठे हो!'

पार्थो....'अरे, इसके माने....' जैसा कुछ कह कर वहाँ से हट गया था।

भद्रा उसे निष्ठुर दृष्टि से देखती रही।

सोमा की बीमारी की बात कहते-कहते रह गई भद्रा।

भद्रा को लगा इस अपदार्थ, हृदयहीन के आगे यह बात बता कर सहानुभूति माँगने जैसा लगेगा। भद्रा को लगा, यह सहानुभूति माँगना सोमा के लिए अपमान-जनक है। और भद्रा को यह भी लगा था कि एक लड़की का अपमान समस्त नारी जाति का अपमान है।

होने दो, पार्थो उसका सगा भाई, पुरुष समाज का 'एक' ही तो है।

× × ×

'सोमा बहुत बीमार है,' पार्थो ने यह खबर दोस्तों से सुनी। हाँ, सभी दोस्त संजय घोष के खड़े किए पण्डाल के नीचे निमन्त्रण खाने आए थे। चतुर संजय घोष ने, पार्थो की तरफ से दोस्तों को देने के लिए, अलहदा तरह के कुछ कार्ड छपवा रखे थे। आते ही बोले थे—'यह लो, तुम्हें जिसे जो देना है।........तुम आकर समय न निकाल सकोगे, यह मैं जानता था, इसीलिए जैसा बन पड़ा करवा रखा है। बुड्ढा हो गया हूँ बेटा, तुम लोगों की आधुनिक भाषा-वाषा नहीं जानता हूँ। देख लो कोई गलती-वलती हुई हो तो....।'

इसके बाद भी क्या पार्थो कहेगा....'नहीं नहीं, इस सब की हमें जरूरत नहीं है....मेरी तरफ से कोई नहीं आएगा।...सम्भव नहीं है।'

अतएव दोस्त, सहपाठी, मोहल्ले के लड़के, जो जहाँ मिला, सबको एक-एक कार्ड बाँट बैठा पार्थो....जब इतना सारा है।

और आए भी सभी।

जैसे झाड़ू से झाड़ कर लाए गए हों।

और सभी पार्थो की लक का जयगान भी करने लगे। समारोह राजकीय ढंग से हुआ....और ज्ञात हुआ कि इस सभी का भविष्य में उत्तराधिकारी पार्थो होगा।

एकदम मन की गहराई में ईर्ष्या का काँटा चुभते रहने पर भी सभी जयगान

करते रहे। पार्थो के मुख पर कोमल हँसी उभर आई। पार्थो ने मजाक करते हुए कहा—'क्यों भई, मैं क्या मामूली लड़का हूँ ?'

बातों ही बातों में दिवेन्दु और शिशिर पत्नियों को साथ लेकर क्यों नहीं आए हैं, इसी अभियोग के बीच अचानक शुभेन्दु बोला—'सुना है न, सोमा बहुत बीमार है।'

अचानक जैसे बत्ती फ्यूज हो गई।

पार्थो उसी 'बत्ती बुझे' चेहरे से बोला—'क्या हुआ है ?'

'क्या हो सकता है ? इस युग का मलेरिया, काला-ज्वर ! ब्लड कैन्सर।'

पार्थो जैसे मतलब नहीं समझ सका। विमूढ़ों की तरह ताकता रह गया।

पार्थो ने जैसे सोचने की कोशिश की, इस रोग के अर्थ क्या होते हैं।,

शुभेन्दु ने मन ही मन कहा—'ओफोह् ! कितना बड़ा पाखण्डी हो गया है ! सुन कर एक बार चौंका तक नहीं। मनुष्य, परिस्थितियाँ बदलने पर, किस कदर मनुष्यत्वहीन हो सकता है, पार्थो उसका उदाहरण है। सहन नहीं हुआ।

कह बैठा—'क्यों बेटा, सोमा नाम याद भी नहीं आ रहा है ? सिर्फ भुला बैठे हो ?'

'क्या कह रहा है ?' पार्थो धीरे-धीरे बोला—'इस बीमारी को विश्वास करने में देर लग रही थी।'

'अविश्वास करने को क्या है ? किस हालत में रहती है वह लड़की ! हालाँकि यह राजरोग है, बड़े आदमियों को ही ज्यादा होता है। खैर जाने दे, आज तेरे मन में रंगीन सपने हैं, आज यह सब बता कर 'मन उदास' नहीं करूँगा। खूब खाया ! बहुत सिगरेट फूँके हैं—अब चला। सुखी रहो बेटा ! क्या कहते हैं.... हाँ-हाँ...दाम्पत्य जीवन सुखमय हो।'

पार्थो ने सोचा, इसी गड़बड़ी के बीच मैं भी अगर निकल आ सकता ? एक कार से दौड़ कर चला जाता, कहता—सोमा, सोमा, मुझे पता नहीं था कि तुम बीमार हो। मुझे किसी ने यह बात बताई नहीं थी। सोमा, मैंने तुम्हें कितनी चिट्ठियाँ लिखी थीं लेकिन तुम्हें मिली नहीं। क्योंकि उनमें से एक भी मैंने डाक में नहीं छोड़ी थी।....मैं अपने समुद्रमुखी बारामदे पर बैठा तुम्हें चिट्ठी पर चिट्ठी लिख कर फाड़ता रहा। लिखते ही लगता था....क्या बेकार सी हो गई चिट्ठी। अपने मन को दशा तो समझा ही नहीं पाया।....इस चिट्ठी को पाकर तुम सोचती—इस लौकिकता की क्या जरूरत थी।

सोमा, चिट्ठियाँ फाड़ता था और सोचता था, अपने आप तुम्हारे सामने जाकर खड़ा हो जाऊँगा तो कुछ भी समझाना नहीं पड़ेगा।

उस वक्त सोचा करता था कि अपनी जटिलता के सारे जाल, मैं फाड़ कर सिर उठा कर खड़ा होऊँगा। मैं अपने जीवन के इस राहु को स्पष्ट रूप से कह

दूंगा—'क्षमता रहने पर बहुत लोग बहुतों की मदद करते हैं, नौकरी लगवा देते हैं, लेकिन इसके बदले में कोई किसी को खरीद नहीं लेता। तुम्हारा खरीदा दामाद बनने में मैं असमर्थ हूं, मेरी बीबी पहले से तय है। मैं उसी से शादी करूंगा। वह बैठी मेरी प्रतीक्षा कर रही है।'

लेकिन देखो, कितना उलटा-पुलटा हो गया सब।

घटनाचक्र मुझे जैसे प्रचण्ड-धारा के साथ बहा ले गया! अब तुम्हारे सामने खड़े होने का मेरा मुंह नहीं रह गया है सोमा। फिर भी तुम बहुत बीमार हो सुन कर रह नहीं सका। सोमा, तुमसे मैं माफी नहीं मांगूंगा—चाहूंगा कि सारी उम्र तुम मुझसे घृणा करो। चिरकाल तुम मुझे अभिशाप दो।....

सोचते-सोचते पार्थो रुक गया। पार्थो के दिल को मुट्ठी में भर कर किसी ने निचोड़ दिया। सोमा का यह 'चिरकाल' कितने दिनों का है?

अगर जा सकता, सोचने से ही तो जाना नहीं हो सकता है। इन मेहमानों से भरे शादी के घर से अगर अचानक वर हवा में गायब हो जाए तो किस कदर शोरगुल मचेगा यह ज्ञान पार्थो को भी है। उसके बाद लौट कर कितने प्रश्नों के वाण झेलने पड़ेंगे!

जा नहीं सका।

आज इसी वक्त जाकर न खड़ा हो सका।

पार्थो ने सोचा था, दूसरे दिन रात के नौ बजे प्लेन छूटेगा सारे दिन में कभी चुपचाप एक बार चला जाऊंगा।

जाकर कुछ कहेगा नहीं।

सिर्फ कहेगा—सोमा, फिर भी निर्लज्जों की तरह, एक बार तुम्हें देखने आया हूं।

लेकिन, पार्थो क्या सचमुच ही सोमा को इतना प्यार करता था? पहले क्या जानता था पार्थो कि सोमा के लिए उसको इतना कष्ट होगा?

नहीं जानता था।

हो सकता है सचमुच ही इतना प्यार नहीं करता था। अपने जीवन की निरुपायता की ग्लानि, अपने चरित्र की लज्जाजनक कमजोरी, तीव्र होकर हर वक्त उसे कष्ट दे रही थी। उसी कष्ट को पार्थो, सोमा को खोने का कष्ट समझ कर व्याकुल हो रहा था।

सोमा से दूर जाकर, उसने सोमा को तिल-तिल ढाला था। सोमा के प्रति विश्वासघात किया है, सोच कर सोमा को देवी की वेदी पर प्रतिष्ठित किया था और ....अपने इस बिक गए जीवन में सोमा ही एक अकेली अपनी चीज है, सोच कर ही उसे जी-जान से पकड़ रखा है।

इसीलिए अभी सोमा के पास न जा सकने के कारण लगा, उसने जीवन में सब कुछ खो दिया।

× × ×

फिर भी जाना न हो सका।

सारे दिन का बिल्कुल ठोस प्रोग्राम। उससे बचना सम्भव नहीं, छुटकारा नहीं। जाले में फँसी मक्खी की तरह सिर्फ छटपटा ही सकता था।

सारे दिन सिर्फ संजय घोष के साथ घूमते रहना पड़ा। विशिष्ट व्यक्तियों के पास से कुछ पत्र, कुछ सर्टीफिकेट, कुछ परिचय पत्र संग्रह करता रहा।

जहाँ जा रहा था वहाँ का भी ठोस प्रोग्राम था। पूरे एक साल का प्रोग्राम बना कर दे रहे थे संजय घोष अपने दामाद को कि किस दिन कहाँ रहेगा, किस दिन कहाँ जाएगा, कब-कब, कहाँ-कहाँ, किस-किस के साथ मुलाकात करेगा, सभी बातों का वे चार्ट तैयार कर दे रहे थे।

उसी के बीच में संजय घोष की लड़की को कौन-कौन से आमोद-प्रमोद में हिस्सा दिला सकेगा, क्या-क्या 'दर्शनीय' दिखा सकेगा, वह चार्ट भी बनाते चल रहे थे।

आज का यह घूमना भी उसी प्रोग्राम को सफल बनाने के लिए अनुकूल उपादान जुटाना था।

इस बीच में किस वक्त पार्थो कहता, 'सुनिए, एक बार मुझे छोड़ दीजिए। मैं अपनी अवहेलित प्रिया को सिर्फ एक बार के लिए देख आना चाहता हूँ।'

सोमा के घर के लगभग पास के रास्ते से दो-दो बार जाना-आना हुआ लेकिन पार्थो कह न सका। पार्थो केवल चुपचाप विदीर्ण होता रहा। और ससुर के बड़े बड़े दोस्तों के यहाँ जाकर दामाद सुलभ आदर प्राप्त करता रहा।

उसके बाद घोष परिवार जो जहाँ था, सबसे साथ दमदम हवाई अड्डे पर पहुँच गया और रोती हुई रूबी के साथ आकाश में उड़ गया।

पार्थो रूबी को बेपरवाह, लाडली सी मूर्ति देखने का ही अभ्यस्त था। आज इस रोती हुई मूर्ति को देख कर चैतन्य हुआ। सोचा, अब से इसका सारा दुःख दूर करना मेरा कर्तव्य होगा। इसे देखना होगा। इसका क्या कसूर है?..

× × ×

लेकिन पार्थो के माँ-बाप?

वे नहीं आए थे लड़के-बहू को हवाई जहाज पर चढ़ाने? नहीं। उन्हें जो कुछ करना था, उन्होंने घर से ही किया था, वे लोग इसी बात के अभ्यस्त भी थे। यही जानते हैं। इसके अलावा बड़े आदमी समधी की जुटाई हुई कार पर चढ़ कर उनके लोगों की भीड़ में भिखारी की तरह लड़के को एक बार देखने जाने की इच्छा

नही हुई थी। यात्रा-काल में लड़का-बहू प्रणाम करने आए थे—इसी से वे कृतार्थ हैं।

पिछले कल तो भोज-गृह में लड़के के साथ एक बात तक नहीं हो पाई थी।

लेकिन क्यों गए थे वे भोज-गृह ? वीणापाणि और क्षितीश ? इनके जाने की तो बात नही थी। इन्होंने तो कहा था—'हम यहीं से आशीर्वाद करेंगे।'

न, आखिर तक अपनी प्रतिज्ञा वे न रख सके थे। संजय घोष सपत्नीक मोटर लेकर आ धमके थे। कहा था—'दादा, और सब बातें जाने दीजिए। मेरी लड़की की शादी में तुम लोग एक बार आकर खड़े तक न होगे ?'

इन लोगों ने तब भी कहा था, हालांकि दबी जुबान कहा था—'कहो तो, यहीं से....'

'लेकिन, फिर मुंह कैसे बचेगा ? पाँच आदमी कहेंगे, इस आदमी ने ऐसा लड़का पकड़ कर लड़की की शादी की है जिसके तीनों कुल में कोई नही है।'

बात सर्वनाशी तो थी ही। संजय घोष का मुंह न बचेगा ? अतएव उसी मुंह को बचाने का दायित्व इन्हें लेना पड़ा। संजय घोष की लड़की की शादी में निमन्त्रण-रक्षा ! कौन किसके मुंह पर कह सकता है—'तुम्हारी मुख-रक्षा का भार मुझ पर क्यों ? तुमने क्या हमारे लिए यह दायित्व निभाया था ?'

नही—सब कोई ऐसा मुंह पर नहीं कह सकते हैं। इसीलिए मन और मुंह के बीच एक दरवाजा खींच कर बन्द कर देते है और काम चलाते रहते है।

वे गए थे।

पार्थो के माँ और बाप।

बहुत देर बाद पार्थो की नजर उन पर पड़ी थी।

देखते ही उसका मिजाज बिगड़ गया।

आश्चर्य है ! ये दोनों कैसी पोशाक पहन कर आए हैं ? इस तरह यहाँ हीन होकर बैठे रहने की क्या जरूरत थी ?

बिल्कुल ही कुछ नही है क्या ?

रूबी की माँ के बगल में अपनी माँ पार्थो को इतनी निष्प्रभ लगी कि ठीक से बात ही न कर सका।

सिर्फ पिताजी से पूछा—'भद्रा नहीं आई ?'

पिताजी ने सिर्फ सिर हिलाया। नही आई।

'जानता था, वह नही आयेगी।' कह कर पार्थो चला गया।

....फिर भी भद्रा जरा दिखाने लायक है लेकिन अहंकार दिखा कर वह आई नही।

हमेशा की अहंकारी भद्रा, आज नए सिरे से अहंकारी लगी पार्थो को। लेकिन पार्थो की माँ ऐसी निष्प्रभ क्यों हो गई। ऐसी तो नही थी।

वहीं मुलाकात हुई थी ।

दूसरे दिन एक बार दोनों एक साथ प्रणाम करने गए थे । तब भद्रा वहाँ थी ।

लेकिन बात करने को तब वक्त कहाँ था ?

जबकि वह टूटू के बारे में जानना चाहता था ।

और कितने दिनों तक टूटू भद्रा को लटका कर रखेगा —यह प्रश्न मन में जोर मार रहा था । सोचा था पूछेगा, 'टूटू ने प्रतिज्ञा तोड़ी नहीं, बड़ा आदमी बन गया है, कार पर चढ़ कर घूमता है, तेरे मामले में क्या कर रहा है ?' लेकिन पूछने का समय नहीं था ।

पार्थो को कुछ भी करने का समय नहीं मिला ।

इसके बाद पार्थो दूसरे देश में जा कर उन्नति के उच्चतर सोपान पर चढ़ बैठेगा....समय उस वक्त घंटे, मिनट और सेकेन्ड में बँध कर रह जाएगा ।

पार्थो नाम का लड़का उसी बंधन के बीच एक फालतू शून्य सा फिसल कर रह जाएगा । पृथ्वी के बाजार में घूमेगा—वह होगा पी० मुखर्जी । अच्छा, फिर जीवन में उन्नति करने से क्या फायदा है ?

किसके जीवन की उन्नति ?

उन्नति का परिचय वहन कर, गौरव से सिर उठाए जो घूमता है वह तो असली आदमी नहीं । दूसरे एक की उन्नति के लिए फिर मनुष्य को आत्महत्या करनी पड़ती है ? क्यों ? अपनी हत्या कर उस दूसरे एक को, उसी का केचुल पहना कर ऊपर उठाने से फायदा ?

पता नहीं क्या लाभ है ? फिर भी लगातार मनुष्य उसी आत्महत्या के इतिहास की रचना करता चल रहा है ।

पार्थो उसी इतिहास का एक साक्षी मात्र है । पार्थो खो जाएगा, सिर्फ रह जाएगा पी० मुखर्जी !

सिर्फ जब वही पी० मुखर्जी दोनों हाथों से पैसे लुटाएगा, तब वही पार्थो नामक लड़का कहीं बैठा लम्बी साँस छोड़ते हुए सोचेगा—पैसे के अभाव में कितने दिन मैं सुरभि केबिन में घुसते-घुसते नहीं घुस सका ।

पी० मुखर्जी जब ड्राई क्लीनिंग का बिल चुकाएगा तब वही पार्थो बुझे मन से बड़बड़ा कर कहेगा—*कभी मेरे पास एक से ज्यादा कमीज न थी, साबुन से फींच-फींच कर इज्जत बचानी पड़ती थी ।* और जब पी० मुखर्जी के लड़के राजपुत्रों की तरह फेंक-फांक कर समारोहपूर्वक पलेंगे तब एक ईर्ष्यालु मन सिर्फ अपने वंचित शैशवकाल के साथ इसकी तुलना कर-करके दीर्घश्वास छोड़ेगा ।

और........

और मिसेज पी० मुखर्जी जब एक प्याला चाय बनाते वक्त क्लान्त होकर सोफे

पर लुढ़क जाएगी तब वही ईर्ष्यालु मन गरज उठेगा—ओह ! इतने से ही तुम बिल्कुल...और मेरी माँ ? मेरी माँ आज भी गृहस्थी में जुता सिलाई से लेकर चंडी-पाठ तक कर रही है।

लेकिन वही ईर्ष्यालु आदमी तो मर कर भूत बन चुका है। जो आदमी जीवित है, वही पी० मुखर्जी अपनी महिमामयी पत्नी के लिए 'हाय-हाय' करता दौड़ा आएगा। शिकायती लहजे में कहेगा—इतनी मेहनत क्यों करती हो ? इतने आदमी सारे दिन करते क्या हैं ?

मिसेज पी० मुखर्जी के सिर में दर्द होने पर डाक्टर को 'कॉल' करेंगे मिस्टर और अगर दो बार खाँसेंगी तो चेन्ज में जाने के लिए किसी पहाड़ी जगह में होटल बुक कर बैठेंगे। ईर्षालु वह भूत, तब शायद करुण दृष्टि से ताकता हुआ कहेगा—मेरी माँ की बड़ी इच्छा थी, एक बार पुरी जाने की। इच्छा थी, कम से कम एक बार ट्रेन के फर्स्ट क्लास कम्पार्टमेन्ट में चढ़ने की।

लेकिन उसकी तरफ देखता कौन है ? आत्महत्या करके जो मर जाते हैं वे सिर्फ साँस छोड़ सकते हैं....क्षोभ भरी, हताशा से अपराध भाव से। वे चिल्ला कर कुछ कह नहीं सकते हैं।

कनाडा से बहुत दिनों बाद भद्रा की पार्थो ने चिट्ठी लिखी। उसमें पूछा था—टूटू के क्या हाल चाल हैं ? वह तुम्हे और कितने दिनों तक लटका रखेगा ? या इस बीच खिसक गया है ?

भद्रा ने उस चिट्ठी का उत्तर नहीं दिया।

भद्रा ने अपने पिताजी से कहा था—पिताजी, तुम जब भइया को लिखना तो लिख देना कि भद्रा को तुम्हारी चिट्ठी मिल गई है।

पी० मुखर्जी की चिट्ठी का उत्तर देने की इच्छा नहीं हुई। लेटर हेड पर वही नाम लिखा था।

लेकिन चिट्ठी लिखती तो इस प्रश्न पत्र का उत्तर क्या लिखती ? यही बात भद्रा चिट्ठी पाने के बाद से सोच रही थी। सोच रही थी कि उस 'नालायक भइया को' मेरी अगर चिट्ठी लिखने की इच्छा हुई तो क्या लिखती—'भइया, उसने मुझे लटका नहीं रखा है। मैंने ही उसे लटका रखा था अभी तक। कहना चाहिए कि तुम्हारी बहन के उपयुक्त काम ही किया था मैंने, लेकिन अब उसे मैंने किसी और से शादी करने के लिए बाध्य किया है।....क्यों, जानते हो ? उस पर मेरा कितना जोर चलता है यही देखने के लिए।....और....और शायद तुम्हारे पाप का प्रायश्चित भी करने के लिए। बड़ा आदमी बना टूटू चौधरी के गले में माला डाल कर अगर मैं भी बरबाद हो जाऊँ तो विवेक को क्या कहूँगी ?'

यही बात सोची थी।

हालाँकि चिट्ठी का उत्तर नहीं दिया था।

लेकिन टूटू चौधरी ने उल्टी बात ही कही थी।

कहा था—'अन्त में तुम मुझे यह हुकुम कर रही हो ? तो फिर विवेक को क्या उत्तर होगी ?'

और भद्रा ने भी उल्टी बात ही कही थी। कहा था—'विवेक ? हो गया फिर तो ! यह सब पुराने जमाने की बातें अभी भी तुम्हारे अन्दर काम करती हैं ? फेंको, फेंको....सब पुराना हो गया है।'

जलती आँखों से देखते हुए टूटू चौधरी ने कहा था—'जैसे तुम मुझे अपने जीवन से निकाल कर फेंक रही हो ? शायद पुराना लग रहा हूँ इसीलिए।'

भद्रा हँसने लगी थी—'हाय भाग्य ! तुम्हें अपने जीवन से निकाल फेंकने का प्रश्न ही कहाँ उठ रहा है ? जीवन ही तो तुम हो।'

'नखरेबाजी छोड़ो।' टूटू गरज उठा—'तुम क्या सोच रही हो, मैं तुम्हारा खिलौना हूँ ? इच्छा हुई तो लेकर खेला, इच्छा न हुई तो खींच कर फेंक दिया।'

'छिः, क्या बेकार की बातें करते हो ?' भद्रा नरम होकर बोली।

'सोचो जरा, मुझसे कहीं ज्यादा उसे जरूरत है।'

'यही बड़ी बात हो गई ?'

'सो मानवता ही तो सबसे बड़ी बात है टूटू।'

धीरे से आँखें फेर कर टूटू बोला था—'उसे जिस चीज की जरूरत है, सहेली के नाते तुम ही तो दोनों हाथ भर कर दे सकती हो।'

भद्रा जरा हँसी। शायद क्षुब्ध हँसी। बोली थी—'उसे किस चीज की जरूरत है बताओ तो ?'

'यह भी कोई नई बात बताने की है ?....जरूरत है उचित चिकित्सा की, उपयुक्त खाद्य पदार्थ की, निश्चित विश्राम की। यह सब तुम अनायास ही....।'

'सिर्फ यही ? और कुछ नहीं ?'

भद्रा एकटक देखती रही।

टूटू नाराज होकर बोला, 'और भी अगर कुछ है तो उसका दायित्व मैं क्यों लूँ—बताओ तो सही ?'

'क्यों ? जानते नहीं हो ? मुझे प्यार करने की वजह से ही इतना दायित्व है तुम्हारा।'

'मैं मूर्ख हूँ, गधा हूँ, बुद्धू हूँ—इसीलिए तुम्हें प्यार करके मर रहा हूँ।' टूटू धीरे-धीरे आवाज ऊँची करता है—'इसके लिए मेरी खूब शिक्षा हुई है।'

'सिर्फ शिक्षा होने से ही क्या होता है, फाइनल परीक्षा देनी पड़ती है।' कोशिश करके भद्रा हँसी, 'देखूँ, कैसा रेजल्ट लाते हो !'

'मुझे पास करने की जरूरत नहीं है। ओफ ! सोच ही नहीं सकता हूँ कि आदमी इस तरह का एक प्रस्ताव भी कर सकता है।'

'मनुष्य ही कर सकता है।'

भद्रा ने उसके हाथ पर एक हाथ रख कर कहा था—'तुमसे शादी करके, मैं उसकी पैसेवाली सहेली बन कर सहायता कर सकती हूँ, लेकिन इस दुनिया से चले जाते वक्त सिर्फ इतना ही लेकर विदा होगी वह ? सिर्फ एक मुट्ठी भिक्षा का अन्न ?'

टूटू ने उसके कन्धे जोरों से पकड़ कर दबाए थे—'और इस धोखेबाजी का जीवन ही उसके लिए परम गौरव का होगा ?'

भद्रा ने उसका वही हाथ अपने मुट्ठी में भर कर दबाया। कहा—'तुम तो धोखा नहीं दे सकोगे।'

'धोखा नहीं दूँगा ? फिर क्या दूँगा सुनूँ ?'

'प्यार दोगे।'

'प्यार ? मैं तुम्हारी सहेली को 'प्यार' देने चलूँगा ?'

टूटू भक् से जल उठा—'भद्रा, मैं तुम्हारा भइया पार्थो मुखर्जी नहीं हूँ जो जरूरत के मुताबिक प्यार बाँट सकता हूँ। एक जने को दी चीज वापस लेकर फिर दूसरे एक जने को देने की क्षमता मुझमें नहीं है !'

'दी चीज लौटा कर नहीं टूटू....।' भद्रा धीरे से बोली—'तुम्हारा दिल बहुत बड़ा है, बहुत प्राचुर्य है। उपच कर जो गिर रहा है उसी से उसका जीवन भर जाएगा।'

'भद्रा, जीवन अंकशास्त्र नहीं है।'

'कौन कह रहा है अंकशास्त्र है। कम से कम सब का नहीं। अंकशास्त्र होता तो क्या मैं तुम्हें ऐसी अद्भुत बात कह सकती ? हृदय नाम की एक चीज है इसी-लिए....'

'इसके मतलब तुम दयावती हो, हृदयवती हो। तुम्हारी सम्पत्ति तुम दुःखी दुर्भागी सहेली को दान करके आत्मतृप्ति से चरितार्थ होगी, और मैं अभागा जिन्दगी भर उसकी सजा भोगूँगा।'

जीवन भर !

धीरे से भद्रा बोली थी—'उसकी जिन्दगी और कितनी है ?'

'बढ़िया। तब तो और भी अच्छा है। इसके मतलब दो दिन बाद उसके मर-खप जाने पर; जला कर आते ही मौर पहन कर नवजीवन के यात्रापथ पर....'

भद्रा हँसने लगी थी।

बोली, 'बहुत गुस्सा हो गए हो न ? अच्छा सोचो, ऐसा भी हो सकता था कि शादी होते न होते मैं ही फट से मर जाती, कॉरोनरी थ्राम्बोसिस से या मोटर एक्सीडेन्ट से। फिर ?'

'तब क्या करता यह तुम चुड़ैल बन कर आकर देख सकती थी।'

भद्रा विपन्न पर मधुर हँसी हँस कर बोली थी, 'तब क्या समझूँ ? मेरा

प्रस्ताव बिल्कुल ही अवास्तविक और असम्भव है ?'

'अवास्तविक ! सौ बार अवास्तविक है....हजार बार अवास्तविक है, लेकिन टूटू चौधरी के शब्दकोष में 'असम्भव' शब्द नहीं है ।'

टूटू बैठा है, उठ कर टहलते हुए बोला, 'लेकिन यह मालूम हो गया, औरतों की तरह भयानक जीव और कुछ नहीं होता है । हँसते-हँसते वे लोग मनुष्य का खून तक कर सकती है । वे अपने सीने में भी चाकू भोंक सकती हैं ।'

लेकिन ऐसा क्या सभी कर सकती हैं ?

हो सकता है भद्रा जैसी लड़कियाँ ही ऐसा कर सकती है । अपने प्रेमास्पद को कह सकती है, 'उसके अन्तिम कुछ दिन, तुम भर दो अमृत सुधा से, प्रेम से । ....पृथ्वी से विदा लेते वक्त ताकि अपना शून्यपात्र उलट कर वह यह कहती हुई, न जाए कि—'यह पृथ्वी कितनी निष्ठुर है, कितनी कंजूस ।'

'इसके मतलब हुए, उस मृत्युपथ यात्री को ठगना होगा बैठे-बैठे । उसके साथ प्यार का अभिनय करना पड़ेगा ?'

'लेकिन तुम तो नहीं ठगे जाओगे ? तुम्हें अभिनय भी नहीं करना पड़ेगा । तुम एक असहाय बेचारी लड़की को, अपने मित्र के विश्वासघात से टूटी लड़की को प्यार किए बगैर नहीं रह सकोगे ।'

और भी कुछ कहने जा रही थी भद्रा । टूटू ने हाथ उठा कर बाधा देते हुए कहा—'ठीक है, ठीक है । एक मरणासन्न रोगी के साथ मुझे जोड़ कर, मेरी मृत्यु का दिन आगे बढ़ा देने की जब तुम्हारी इतनी इच्छा है तब यह वासना पूरी होगी । उसके बाद जब मुझे यह सम्राट् रोग होगा, तब मेरे उन आखिरी दिनों में कौन सुधावृष्टि करने आएगा, तुम्हीं जानती हो । तुम आओगी तो जरूर कहूँगा ....गुड बाई देवी ।'

भद्रा आँखों में आँखें डाल कर देखने का साहस न जुटा सकी । दूसरी तरफ देखते हुए बोली, 'तुम्हीं ने तो कहा था, सोमा की बीमारी छूत वाली नहीं है ।'

हाँ, यह घटना घटित हुई थी ।

अचानक ही एक दिन भद्रा ने पूछा था, 'टूटू, सोमा की बीमारी क्या छूत-वाली है ?'

टूटू ने कहा था, 'नहीं ! यही एकमात्र सद्गुण है इस सम्राट् रोग का—रोग निर्णय के साथ ही साथ उसे जाति च्युत करके हटाया नहीं जाता है ।'

'तो फिर, मैं जो उसके पास आती जाती हूँ....उससे कोई नुकसान नहीं हो रहा है ?'

टूटू ने हँस कर कहा था, 'अरे बाप रे ! भद्रा देवी के चरित्र से यह तो मेल नहीं खा रहा है । डर ?'

'अपने लिए नहीं', भद्रा बोली थी, 'दूसरे के लिए भी तो डर लग सकता

है । इसके अलावा घर आती हूँ, पिताजी की बीमारी में सेवा कर रही हूँ....।'

'तुम्हारे पिताजी को क्या हुआ ?'

'दूसरा कुछ नहीं, मनोभंग की व्याधि । लगभग शय्यागत हैं ।'

'ओह !' टुटू हँसने लगा, 'वह एक गाना है न, कौए के घोंसले में कोयल रहती है, जब तक न उड़ना जाने, उड़ना सीख, घर छोड़ कर चली जाती दूसरे वन में ।'....यह बात माँ-बाप को हमेशा याद रखनी चाहिए ।'

'सभी क्या दूसरे वन में चले जाते हैं ?' भद्रा बोली—'तुम तो अपने घर ही में रह गए । तुम्हारी भाषा में कौए के घोंसले में ।'

'मेरी बात छोड़ दो ।'

'क्यों, छोड़ क्यों दूँ ?'

'देना चाहिए । मैं बिगड़ा आदमी हूँ । मेरे लिए जैसा घर में रहना वैसा ही घर छोड़ कर चले जाना । घर मेरे लिए विश्व के रंगमंच का एक छोटा-सा मंच-मात्र है ।....यही देखो न, पहले जब बेकार था, माँ रात-दिन सिंहवाहिनी की मूर्ति धारण किए रहती थी । अब बिना माँगे रुपए पा रहा हूँ, इसलिए जगद्धात्री मूर्ति में विराजित है । पहले वही 'ऐ टुटू अभागे' से भिन्न दूसरा सम्बोधन नहीं करती थी । कहती—जाने से पहले खाना पेट में डाल कर मुझे कृतार्थ कर जाओ । कोई तुम्हारे लिए तीन बजे तक रसोई ले कर बैठा नहीं रहेगा । अब बुलाती हैं....' ओ [illegible] बेटे मेरे, जाने से पहले मुँह में कुछ डाल लेना, न जाने कब लौट पाओ ।'—देख कर मजा आता है । हँसी का नाटक लगता है ।'

भद्रा बोली थी, 'इसके लिए तुम माँ पर आरोप नहीं लगा सकते हो । बेकार लड़का, माँ के लिए एक मुसीबत होता है ।'

'हो सकता है । तुम लोग मातृजाति हो, समझती होगी । फिर भी अभी तक अगर माँ अभागा, उल्लू, गधा कह कर बुलाती तो लगता [illegible] है ।'

'वाह, ऐसा कैसे बुला सकती है ? अब जिस पर लक्ष्मी सदय हो रही है उसे क्या लक्ष्मी का कोपभाजक कह कर पुकारा जा सकता है ?'

'लक्ष्मी-सदय ? मैं ऐसा कब से हुआ ?' टुटू गुस्से से बोला, 'तुम ऐसा होने कहाँ दे रही हो ? जेब में कुछ कड़कड़े नोट रहने से ही कोई लक्ष्मी की नजरों में उच्च नहीं हो जाता है ।'

'गृहस्थ लोग लेकिन पैसे वालों को ही ऐसा कहते हैं ।'

'चूल्हे में जाए गृहस्थों का हिसाब । मेरे हिसाब से कब मुझ पर [illegible] होंगी बता सकती हो ?'

'जल्दी ही ।' कह कर मुँह दबा कर [illegible] हँसी ।

उस दिन इतनी ही बातें हुई थीं । फिर कुछ दिनों बाद मिले [illegible]

ही कह बैठी—'देखो, मैंने सोच कर पाया कि सोमा की शादी हो जानी चाहिए।'

अवाक् रह गया टूटू—'सोमा की ? उसकी इस बीमारी में ?'

'टूटू, उसको यह बीमारी तो ठीक होगी नही। जबकि कितने दिनों से वह शादी के सपने देख रही है....' जरा रुक कर बोली, 'असल में उसके जैसी लड़की जीवन के और किसी रूप को पहचानती ही नही है। वे लोग शादी के सपने के अलावा कोई दूसरा स्वप्न देखना तक नहीं जानते है।'

'सब तो समझा। लेकिन उसके सपनों को सफल करने के लिए, कौन उससे शादी करने आएगा ?'

भद्रा बेहिचक बोली, 'क्यों! तुम ?'

'मैं ?'

टूटू उत्तेजित हो उठा, 'देखो भद्रा, सोमा मरीज है, सोमा की इस अवस्था में, माँ यह काण्ड कर बैठी, इसीलिए कभी-कभी जाकर उसके पास बैठ जाता हूँ.... इसके लिए....छि:, भद्रा, छि: ! तुम भी इन्ही अति साधारण लड़कियों की तरह.... छी: छी: !'

मुस्कुरा कर भद्रा बोली—'क्या ? अति साधारण लड़कियों की तरह, जेलेसी के कारण तुम पर व्यंग कस रही हूँ ? तुम अगर ऐसी बात सोचोगे तो तुम्हें छि: करती हूँ। मैं सच कह रही हूँ टूटू।'

'सच कह रही हो ?'

टूटू छटपटा कर उठ खड़ा हुआ। बोला—'इतने दिनों से मुझे काँटे में फाँस कर नचाती रही और अब यह बात कह रही हो ? तुम्हारा विवेक कुछ नही बोला ?'

गुस्से के मारे टूटू विवेक शब्द का ही प्रयोग कर बैठा।

और इसके बाद, भद्रा के प्रश्न के उत्तर में कड़ी आवाज में कहा—'हाँ, कहा था। कहा था मैंने कि सोमा की बीमारी छूत की बीमारी नही है। अगर जान जाता कि मुझे बध करने के इरादे से इस हथियार का संग्रह कर रही हो तो न कहता।'

'मुझसे झूठ बोलते ?'

'हजार दफा। जानती नही हो, शास्त्रों में है कि स्त्री जाति से झूठ बोलने में कोई दोष नहीं।'

'अच्छा ? यह सब शास्त्र-कथाएँ नही जानती थी। खैर, जब बिना समझे सच्ची बात कह ही डाली है तब उपाय ही क्या है ?' भद्रा रंगभंग की सी आवाज में बोली, 'तुम्हारे सिवा मेरी बात और कौन सुनेगा ?'

'सीधे शब्दों में कहती क्यों नही हो, तुम्हारे अलावा मेरे हुकुम पर कौन

फाँसी के फंदे से लटकेगा ?' फिर बोला था, 'ठीक है, ठीक है। तुम जब हुकुम कर सकी हो तब प्रतिवाद करने को कुछ है नहीं। सिर्फ यही प्रश्न पूछूँगा, सोमा मिट्टी की गुड़िया नहीं है। वह क्यों राजी होगी ?'

भद्रा का चेहरा गम्भीर हो उठा। बोली, 'इस मामले में निश्चिन्त रहो।'

'क्यों ? वह क्या प्रेम की निराशा से इतनी जरजर है कि 'जिसे पाऊँ उसे खाऊँ' हो रही है ?'

'क्या कहते हो ? वह तुम्हें देवता की नजर से देखती है।'

'बहुत अच्छे ! तब तो बारह की जगह मेरे तेरह बज गए। दानव को अगर देवता का रूप धर कर अभिनय करना पड़ा....।'

'इसके लिए मैं नहीं सोचती हूँ। तुम्हें कुछ भी नहीं करना पड़ेगा।'

'सिर्फ एक शादी करनी पड़ेगी।' टूटू ने व्यंग करते हुए कहा—'और कुछ नहीं। फिर भी कहूँगा, तुम जितनी भी करुणामयी क्यों न बनो, सोमा कभी भी इस अद्भुत प्रस्ताव को नहीं मानेगी। वह तो जानती है, उसकी बीमारी क्या है ?'

भद्रा धीरे से बोली—'नहीं जानती है टूटू, वह नहीं जानती है। उसे बताया गया है, एनीमिया हुआ है उसे। सोमा की माँ को भी पहले यही बताया गया था लेकिन अचानक उस दिन मालूम होते ही, उसी दिन वह यह काण्ड कर बैठी। ....सोमा भी अपनी माँ की तरह भाव प्रवण है।'

हाँ, सोमा की माँ बहुत ज्यादा भावुक थीं। इसीलिए पति के मरते ही अपनी मृत्यु शय्या रचा कर परमायु का ऋण चुका रही थीं बैठे-बैठे।....अचानक जिस दिन सुना, सोमा भी चली जाएगी, उसका टिकट कट चुका है, उसी रात, जितनी इच्छा उतनी नींद की गोलियाँ खा कर चिरकाल के लिए सो गईं।

सोमा की दादी को नींद नहीं आती थी—इसीलिए घर में नींद की दवा मौजूद रहती थी। और ला देने वाले के अभाव के कारण, सोमा जिससे बन पड़ता, उसी से कह-कह कर मँगा मँगा कर इकट्ठा करती थी। सोमा जानती तक न थी कि उसका यह सवाल गलत लग रहा है।

'मैं इस सोमा की माँ को जगत् की सबसे निर्दयी माँ कह कर चिन्हित करूँगा। ....स्वार्थी, आत्म सुखी, निर्दयी माँ।'

टूटू ने कहा था।

भद्रा ने कहा था, 'धीरे। सोमा को बताया गया है कि माँ का अचानक हार्टफेल हो गया है।'

सोमा अबोध, सुकुमार, मृत्युपथयात्रिणी, इसी वजह से भद्रा ने सोमा को यही समझाया था। और इसीलिए सोमा के अन्तिम दिनों को अमृत से भर देने के लिए टूटू को बढ़ा दिया था। 'मेरे प्यार से टूटू उसको सन्तोष न होगा।' भद्रा बोली थी—'इसके लिए चाहिए पुरुष का प्यार, पुरुष का साहचर्य। और

इसके अ की सहा-
यता।

×

पहले सोमा ने विश्वास नहीं किया था।

सोमा ने रुंधी आवाज में कहा था,—'इस वक्त मुझसे मजाक मत करो भद्रा ....छिः !'

'मजाक माने ?'

भद्रा ने आँखें दिखा कर कहा था, 'मेरे कार्यकलाप से क्रुद्ध होकर बहुत दिनों से वह त्याग चुका है....समझी ? उसके उस मग्न मन में तुम आ खड़ी हुई हो अपूर्व मूर्ति रूप में....।'

'मैं तो मरने बैठी हूँ भद्रा....!'

'तुझे मरने दे कौन रहा है ? उस गंवार को तो तू पहचानती है ? वह तुझे जीवन-प्रण रख कर, अच्छा कर लेगा।'

'और तुम ?'

'मैं ? मैंने तो स्वेच्छा से त्याग दिया है बाबा। असली बात है—शादी, गृहस्थी, पति, पुत्र—यह सब बातें मुझे ठीक सूट नहीं करती हैं। सोचने से ही मन में आतंक छा जाता है। वह जैसा गंवार है बाबा !'

'उस जैसे आदमी को तू नहीं समझ सकी भद्रा ?'

सोमा ने आश्चर्य से सांस छोड़ी।

भद्रा बोली, 'तू ही पहचान बाबा। रतन ही रतन को पहचानता है।'

'लेकिन भद्रा....।'

'क्या हुआ ? अभी भी मेरे निर्लज्ज भाई के लिए दिल फटा जा रहा है ?'

'नहीं।'

सोमा धीरे से बोली, 'वह बात नहीं सोच रही हूँ। जो जहाँ है सुखी रहे। सिर्फ सोचती हूँ, इतने दिनों से सभी जानते रहे कि उसके साथ तुम्हारी....।'

'अब जानेंगे, उसके साथ तुम्हारी....।' कह कर भद्रा ने उसके गाल दबा दिए थे।

कमजोर मांस रहित गाल।

फिर भी लाल हो आए थे।

सोमा की आँखें छलछला आईं, 'माँ न देख सकी।'

क्या पता उनकी माँ जानने बैठती तो क्या होता, लेकिन जिन्हें पता चला, वे सब प्रायः पत्थर बन गए।

सोमा और टूटू ?

सोमा के साथ टूटू की ?

दिवेन्दु ने कहा, 'टूटू, तू इस तरह से आत्महत्या करने क्यों जा रहा है ?'

अतिन बोला—'क्यों भइया, डूब-डूब कर पानी पी रहे थे ? इसीलिए क्या नार्थो....? लेकिन अब उस शव-देह से शादी करके फायदा ?'

शुभेन्दु, अनुतोष, शिशिर सभी बोले, 'आश्चर्य है ।'

फिर भी हो गई शादी ।

× × ×

टूटू के यहाँ, तिमंजिले में एक कमरा था । उसी कमरे में सोमा के लिए बिस्तर बिछाया गया, नर्स आई, आयीं रोगी के लिए तरह तरह की चीजें ।

सोमा पतिगृह आई ।

ठीक हो जाने पर सोमा पति के साथ हनीमून के लिए कश्मीर जाएगी । सोमा के साथ टूटू की बात हो गई है ।

टूटू की माँ सिर पकड़ कर बोली, 'मैं इतने सालों से मुखर्जी की लड़की को लटका रखने के बाद अब तू ने यह किया ?'

टूटू हँस कर बोला, 'तो क्या हुआ ? ये तो चटर्जी की लड़की है । कुलीन कन्या । कोई दोष नहीं है ।'

'यह बात नहीं हो रही है ।'

माँ कातर हो कर कहती है—'वह तो जैसी बीमार है, लग रहा है किसी भी वक्त....।'

'माँ, हम लोग कौन रोगी नहीं हैं, बताओ तो ?' टूटू हँस पड़ा, 'कोई न कोई रोग सभी को है । और किसी भी क्षण मर भी सकते हैं । बताओ, मर सकते हैं कि नहीं ? कोई जोर गले से कह सकता है—'नहीं, मुझे मरने में अभी देर है ?'

माँ सिर ठोंकते हुए बोली—'तू अन्त तक ऐसा ही कुछ गड़बड़ करेगा, यह मैं जानती थी ।'

टूटू ने हँस कर माँ की पीठ ठोंकी, 'फिर तो झगड़ा ही खत्म हो गया । तुम्हारा भविष्य दर्शन सच हो गया लेकिन माँ, तुम्हारा यह अफसोस, दुःख यह सब निचली मंजिल तक ही रखना, तिमंजिले तक न उठे ।'

'मैं तेरे तिमंजिले पर झाँकने जाने तक को राजी नहीं हूँ । नई बहू आई । उसके साथ एक नर्स । छिः छिः ।'

'माँ, मैंने सुना था कि जब तुम नई बहू बन कर आई थीं तुम्हारे साथ एक नौकरानी आई थी ।'

'वह और यह एक बात हुई ? वह तो उस वक्त की प्रथा थी ।'

'यह तो फिर प्रयोजनवश हुआ । प्रयोजन से ही तो प्रथा की सृष्टि हुई है ।'

'लेकिन तेरी यह दुर्बुद्धि क्यों हुई ? बता सकता है ?'

टूटू ने हँस कर कहा, 'आज तक कोई दुर्बुद्धि सम्पन्न व्यक्ति इस प्रश्न का उत्तर दे सका है ?'

लेकिन सिर्फ माँ ही नहीं टूटू की नई बहू भी यही एक प्रश्न पूछती है।

टूटू तब उसके हाथ पर हाथ रख कर कहता, 'दुर्मति है दुर्मति ! दुर्मति का कोई क्या एक्स्प्लेनेशन है ?'

'मेरे लिए इतना सुख रखा है मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था।'

सोमा बड़ी-बड़ी आँखों से उसे देखती है। उन आँखों में खुशी, वेदना, कृतज्ञता। वह आँखें बहुत पाने की खुशी से भरपूर।

मन ही मन टूटू कहता, 'भद्रा देखो, तुम्हारा हुकुम मान रहा हूँ।'

लेकिन सिर्फ क्या भद्रा का हुकुम ही मान रहा है ?

टूटू को नशा नहीं चढ़ा है क्या ?'

असहाय का सहाय बनने का नशा ? वंचित को पूर्णता का स्वाद देने का नशा....निश्चित् मृत्यु को रोक रखने का नशा ? कृतार्थ को और भी कृतार्थ करने का नशा ?

बलिष्ठ पुरुषचित्त इसी नशा में मस्त होता है।

टूटू इसीलिए अपनी नवविवाहिता के इतने से आराम, खुशी, स्वच्छन्दता के लिए स्वर्ग-नरक-पाताल एक करता रहा। उपकरण पर उपकरण लाकर भर दिया और सोमा अच्छी हो जाएगी तो क्या-क्या करेंगे—दोनों यही परामर्श करते।

यही उनकी बातचीत थी।

टूटू जब साधना करता, जी-जान से करता।

टूटू के उसी जी-जान की साधना के फलस्वरूप क्या टूटू अन्त में निश्चित मृत्यु से जीत जाएगा ?

जाड़ा, गर्मी, बरसात, बसन्त सभी ऋतुओं के फल फूल ला कर सोमा को देता।

टूटू के दोस्त लोग आते कभी-कभी। भद्रा भी अक्सर ही आती।

देखती, तिमंजिले में उस कमरे के सामने छत पर फूलों से लदे गमलों के बीच, रंगीन बेंत की कुर्सी डाले दोनों सामने-सामने बैठे हैं। सोमा के गाल लाल, सोमा की आँखों में बिजली सी चमक।

भद्रा जब आने लगती, टूटू उसे पहुँचाने चलता। कहता, 'हो रहा है ?'

भद्रा आँख उठा कर अद्भुत हँसी हँसती, 'जबरदस्त ढंग से हो रहा है। लगभग ईर्ष्या करने लायक।'

'यही चाहता हूँ। चाहता हूँ कि तुम जल-जल कर मरो।'

'लेकिन तुम्हारा चेहरा तो प्रतिहिंसा से चरितार्थ हुआ सा नहीं लग रहा है।'

'फिर कैसा लग रहा है ?'

'प्यार का, ममता का, सहानुभूति का।'

उसके साथ चलते-चलते टूटू कहता—'कभी-कभी मुझे भी इसी बात का डर लगता है। लगता है कहीं सोमा को प्यार तो नहीं करने लगा हूँ।'

भद्रा हँसती।

कहती, 'जाओ, अब लौट जाओ। सोमा को फिर दूसरा डर लगेगा।'

'नहीं, नहीं लगेगा। वह अद्भुत रूप से सरल है, भयंकर विश्वासी है।'

'जानती हूँ,' कह कर भद्रा जल्दी से बढ़ जाती है। और मन ही मन कहती है—जानती थी। मैं जानती थी। पौरुष चरितार्थ होता है, सोमा जैसी लड़की से ही। लेकिन सोमा क्या सचमुच अच्छी हो रही है ?

× × ×

वे भी यही कहते। फुटपाथ वाले लड़के।

अजित और शुभेन्दु।

हाँ, अब यही दो रह गए हैं। और सभी गृहस्थ हो गए हैं, कामकाज कर रहे हैं, समय नहीं है। गप्प मारने का समय नहीं है। इसके अलावा साहस भी नहीं है। रास्ते पर खड़े होकर घंटों गप्पें हाँकने की बात सुन कर किसी की बीबी गुस्से से न जल उठेगी ? जरूरत भी क्या है ?

और अब क्या वे 'लड़के' रह गए हैं ? 'पिता' नहीं बन बैठे हैं ?' पिता बन बैठने का दायित्व नहीं होता है ? लड़के के लिए बेबीफूड जुटाना, उसके लिए डाक्टर, मास्टर, दर्जी, दवाई इत्यादि बहुत कुछ चाहिए कि नहीं ? कुछ न हो—दफ्तर में ओवरटाइम काम करके दो पैसा ज्यादा कमाया जा सकता है। इस बात को इन्कार कौन कर सकता है ?

अतएव इस महफिल में वे लोग अब दिखाई नहीं पड़ते हैं। सिर्फ यही दोनों आते।

क्योंकि न उनकी नौकरी लगी है न उनकी शादी हुई है। अभी भी भिक्षा ही उनका भरोसा है।

लेकिन अड्डे में अब वह गरमा-गरमी नहीं रही। दो आदमी कितनी बातें करेंगे ? और कहें भी तो क्या ? एकमात्र प्रसंग है राजनीति—सो उसमें भी जैसे उत्तेजना नहीं रही।....एक समय था, क्योंकि सब प्रत्याशा करते थे—थी घटनाओं की निन्दा-प्रशंसा। कौन नकली आदमी है, कौन निष्कलंक, कौन निर्दोष है और कौन सही, इस बात पर भयंकर बहस होती।

अब सारा ज्वार-भाँटा में बदल गया है। सभी जैसे प्रत्याशा का पात्र र के किनारे फेंक कर, सब समझ-बूझ कर पंडित बन बैठे हैं।....नेता माने गा समझ लिया है....सबसे प्रसिद्ध मुहावरा यही है, 'इस जंगल में

आता है, बनबिलाव बन जाता है।'

जहाँ आशा नहीं, आश्वासन नहीं, संशय नहीं, कौतूहल नहीं, विश्वास नहीं, अनिश्चयता नहीं—सब साफ स्पष्ट, वहाँ तर्क कैसा ? उत्तेजना ही किस बात की ?

अब इसीलिए दो-चार व्यक्तिगत बातें करते, बाकी वक्त चुपचाप धुँआ उड़ा कर बिता देते।

बीच में अतिन ने कोई एक नौकरी की थी, इन्श्योरेन्स की दलाली या ऐसा ही कुछ .. वह नौकरी भी चली गई।....शुभेन्दु तो उतना भी नहीं कर सका है। अब वह इस कोशिश में है कि किसी गहरे समुद्र में गोताखोर उतार करके बाहर से कोई एक स्टाइपेण्ड जुगाड़ करने का।

अफ्रीका या अमेरिका में, पश्चिम जर्मनी या हवाई द्वीप....किसी भी तरह का किनारा मिलने से मतलब है।

लेकिन अब कोई किसी को कुछ बताता नहीं है, क्योंकि अब सब चालाक हो गए हैं। जानते हैं, न हुआ कुछ तो शर्म की बात होगी। इस बात का भी डर है कि दूसरा जान लेगा तो काम से हाथ भी धोया जा सकता है। इसीलिए अपना अपने तक ही रख कर कहते—'दिवेन्दु के एक और 'इशू' हुआ। आश्चर्य है, कितना नासमझ है।'

'वह तो कहता है, उसकी पत्नी उस बात से राजी नहीं। कहने से बिगड़ जाती है।'

'ताज्जुब लगता है। वैसे तो उलटा ही होता है।'

'दिवेन्दु की पत्नी के विचार अलग हैं। उसका कहना है जो करोगे, उसका फल भोगने को तुम बाध्य हो।'

'गंवार है, और क्या ?'

'हो सकता है, अनुतोष कितना निर्लज्ज हो गया है, जानता है ? उस दिन दो रुपया उधार माँगा, कह दिया नहीं है।' या कहते—'जानता है, शिशिर कितना चालाक है ? मियां-बीबी कमाते हैं लेकिन घर खाली। कहते क्या हैं—'गरीब आदमी को राजरोग की क्या जरूरत है, यही ठीक है।'

कभी-कभी सोमा की बात उठती।

कहते—'बच ही गई लगता है। टूटू में गुण है।'

'रुपया हो तो ऐसा गुण सभी दिखा सकते हैं।'

'अरे नहीं-नहीं, सिर्फ रुपया रहने से ही नहीं होता है। देखो न, बराबर हा हम लोग सोचते रहे कि शेरनी के लिए जान दे रहा है।'

'अरे बाबा, जान देता होता तो इतने दिनों तक फ्रिज में बन्द करके थोड़े

ही रख देता ? असल में उसके पुरुषों जैसे हाव-भाव के कारण छोड़ दिया था। एवायड करता था।'

'सोमा पूरी लड़की है।'

'यह सही है। पहले इतना समझ में नहीं आता था, अब बहू बन कर....ऐसी एक मिट्टी के ढेले सी बहू पाना वास्तव में भाग्य की बात है ,।

'मर-वर गई तो मुश्किल है।'

'नहीं, नहीं, जी जाएगी। देखा नहीं, उस दिन चेहरे का रंग बदल गया है।

सोमा जब अपने उस मृतपुरी से घर में दो अधमरे मनुष्यों के साथ पड़ी रहती थी, खिड़की के सामने खड़ी-खड़ी शाम बिताती तब किसी को ख्याल नहीं आया था कि सोमा सी पत्नी पाना भाग्य की बात है। तब वे पार्थो के विश्वासघात पर नाराज होते थे। लेकिन सोमा के लिए कुछ करना सम्भव है या नहीं, सोचा नहीं था।

अब उसे टूटू के छत वाले बगीचे में टूटू के प्यार में खोई-सी मूर्ति बनी बैठी देख....उन्हें लगता, सोमा एक मंहगी चीज है।

शायद ऐसा ही होता है।

फेंकी हुई चीज, अवज्ञापूर्वक फेंक दी जाए और उसे दूसरा कोई उठा कर काम में लगाये तो तुरन्त लगेगा, 'उसने ले लिया, वह जीत गया।'

अब भी यही। अब लगा सोमा जब जी जाएगी, वे सोचने लगे, 'टूटू भाग्यशाली है,' सोच रहे हैं, 'सोमा-सी लड़की नहीं होती है।'

× × ×

अब अड्डे पर पार्थो की बात नहीं उठती है। पार्थो की बात वे लोग भूल ही गए हैं।

क्षितीश मुखर्जी जब क्लान्त से बाजार का झोला हाथों में लटकाए, धीरे-धीरे बाजार से लौटते या बाजार जाते, कोई नहीं कहता—'पार्थो के पिताजी जा रहे हैं।'—शायद पलट कर देखते तक नहीं हैं, शायद सोचते हैं, गली के उस घर का मालिक जा रहा है।

सिर्फ वयस्क लोग ही कभी-कभी धिक्कारते हुए कहते—'लड़का योग्य होने से ही अगर कोई सुखी हो सकता। हुँ! सभी कुछ राख पर घी डालने के बराबर है। वह जो हमारे क्षितीश बाबू हैं, अभी भी रफू किया कुर्ता और पैबन्द लगा जूता पहन कर बाजार ढो रहे हैं, राशन ला रहे हैं। और लड़का? बहू लेकर प्लेन पर चढ़ा यूरोप में भ्रमण कर रहा है। छिः छिः।'

बाहरी दृश्य पर ही लोग निर्भर होते हैं। कौन जानने जा रहा है। यह कष्ट क्षितीश खुद उठा रहे हैं। वह लड़के को लिखते—'तुम्हें रुपये भेजने की जरूरत

नहीं है, मेरा खर्च चल जाता है।'

यह खर्च कैसे चल रहा है, नहीं लिखते हैं। लड़के को गुस्सा क्यों नहीं आएगा? अभिमान क्यों न होगा? वह क्यों न सोचे—'ठीक है, लड़की ही अगर तुम्हारी लड़के से ज्यादा अपनी है तो होने दो। तुम लोग अगर मुझे त्याग सकते हो तो मैं ही क्यों....'

ऐसी बात सोच कर उसके सिर में कैसा तो होने लगता है। खाना, पीना, सोना, काम-काज सब बेस्वाद लगने लगता है, और रह-रह कर एक तीखा काँटा सा मन में बेंधने लगता है—यह कौन जानना चाहता है?

बात सुनाने की स्वाधीनता सभी को है, इसीलिए सुनाते हैं। कहते—जरूरत नहीं है बाबा, योग्य लड़के की इससे तो हमारा बेकार लड़का ही अच्छा है।'

टूटू की बात भी मोहल्ले में उठती।

'भगवान् जानता है कहाँ से क्या करके बड़ा आदमी बन बैठा है, गाड़ी खरीदी, घर ठीक किया—माँ-बाप ने जरा सुख का मुँह देखा कि बस! हो गया उनके सुख का अन्त।....लड़का न जाने किस जगह से एक रोगी को पकड़ लाया है और शादी करके उसके पादपद्म में सब कुछ डालता जा रहा है। धिः धिः।'

धिः धिः।

धिक्कारने से कोई नहीं बचा है। क्योंकि किताब की जिल्द से लोगों का कारोबार रहता, अन्दर की विषय-वस्तु लेकर नहीं।

जबकि सभी मन ही मन कहा करते।

पार्थो के पिता जी कहते—'ये देखो, एक साल तो होने को आए। स्वदेश लौटने का समय हुआ है उसका। कहाँ, एक बार भी तो नहीं लिखा—'माँ पिताजी, लौट रहा हूँ। इतने दिनों बाद तुम लोगों के पास जाऊँगा, सोच कर बहुत अच्छा लग रहा है।....क्यों लिखेगा? आकर उतरेगा जरूर अपने बड़े आदमी ससुर के घर। हमारे पास धर्म की साखी रख एक बार मिलने आएगा। जाने दो ठीक है। हमारे दिन कहाँ अटकते हैं?

पार्थो सोच रहा है—'यह लो, मेरी यहाँ की मियाद खत्म हो गई। एक चिट्ठी तक न आई जिसमें मातृहृदय की व्याकुलता या पितृहृदय के गम्भीर स्नेह की झलक मिलती। और स्त्री के माँ-बाप? हर डाक उनकी व्याकुल उत्कंठा और उद्दाम उत्साह का परिचय वहन कर चिट्ठी ला रही है।....फिर? फिर मैं किसके लिए उस उदासीनता की दीवाल पर पंख कूटूँ? नितान्त पराए ही मिलने चला जाऊँगा।'

पार्थो ने यही किया।

उस देश से लौट कर बहू और माल-असबाब के साथ संजय घोष के घर जा उतरा।

दूसरे दिन इस मोहल्ले में आने का विचार किया।

जब कल ही वहाँ जाने की सोचा है तो आज की शाम को काम में क्यों नहीं लगाते ?' रूबी ने उत्साह से कहा—'जरा छोटी बुआ के घर चलो न! वहाँ जाने के बाद से ही सुन रही हूँ फूफाजी बीमार हैं....एक काम निपट आएगा।'

जैसा काम निपटाना ही उद्देश्य हो।

पार्थो अगर तुरन्त राजी हो जाता, रूबी शायद खुद ही कहती—'आज रहने दो। कल सब होगा। काफी टायर्ड लग रहा है।'

लेकिन पार्थो कह बैठा—'बाबा, फिर अब तुम्हारे फूफाजी के चंगुल में पड़ना होगा ? तीन घंटे से पहले क्या उठ पाएंगे ?'

, पार्थो रूबी के छोटे फूफा को पहचानता है। फूफा जी दो-तीन बार योरोप, अमेरिका घूम आए हैं। उनके पास जा बैठे तो छुटकारा नहीं—एक ही किस्सा सौ दफा सुनना पड़ेगा और अब तो रूबी लोग नए-नए घूम कर आए हैं। रूबी लोगों ने क्या देखा है, उन्होंने क्या देखा था........वह तुलनात्मक कहानी क्या आसानी से खत्म होगी ?

इसीलिए पार्थो बोला—'आज बहुत टायर्ड लग रहा है। बस इसके बाद रूबी को रोक कर रखना आसान न था। अतएव पार्थो को सपत्निक निकलना पड़ा—पत्नी के फूफा के घर के उद्देश्य से।

उनका घर मनोहरपुकुर में था।

जिस मनोहरपुकुर में सोमा लोगों का घर है।

रूबी बोली—'फूफा जी बीमार रहते हैं। और कुछ ले जाने की जरूरत नहीं है, जरा ज्यादा फल-वल ले चलो और कड़ेपाक वाला संदेश।' जिस तरह से कहा उससे लगा ले जाना कर्त्तव्य है। उस कर्त्तव्य का पालन किए बगैर उपाय न था।

पार्थो ने जानबूझ नहीं किया था, फिर भी अचानक सोमा के घर के सामने कार झटका दे कर रुक गई।

रूबी चिन्तित होकर बोली—'क्या हुआ ?'

पार्थो कुछ न बोला। उसने दरवाजा खोला।

'मैंने कहा था ड्राइवर को ले चलो....'

रूबी की पूरी बात सुने बगैर ही पार्थो कार से उतर पड़ा और उस घर के सामने दिब्येन्दु को देखा।

या देखने की घटना पहले ही घटित हो चुकी थी ?'

६

नहीं है, मेरा खर्च चल जाता है।'

यह खर्च कैसे चल रहा है, नहीं लिखते हैं। लड़के को गुस्सा क्यों नहीं आएगा ? अभिमान क्यों न होगा ? वह क्यों न सोचे—'ठीक है, लड़की ही अगर तुम्हारी लड़के से ज्यादा अपनी है तो होने दो। तुम लोग अगर मुझे त्याग सकते हो तो मैं ही क्यों....'

ऐसी बात सोच कर उसके सिर में कैसा तो होने लगता है। खाना, पीना, सोना, काम-काज सब बेस्वाद लगने लगता है, और रह-रह कर एक तीखा कांटा सा मन में बंधने लगता है—यह कौन जानना चाहता है ?

बात सुनाने की स्वाधीनता सभी को है, इसीलिए सुनाते हैं। कहते—जरूरत नहीं है बाबा, योग्य लड़के की इससे तो हमारा बेकार लड़का ही अच्छा है।'

टूटू की बात भी मोहल्ले में उठती।

'भगवान् जानता है कहाँ से क्या करके बड़ा आदमी बन बैठा है, गाड़ी खरीदी, घर ठीक किया—माँ-बाप ने जरा सुख का मुंह देखा कि बस ! हो गया उनके सुख का अन्त !....लड़का न जाने किस जगह से एक रोगी को पकड़ लाया है और शादी करके उसके पादपद्म में सब कुछ डालता जा रहा है। छिः छिः।'

छिः छिः।

धिक्कारने से कोई नहीं बचा है। क्योंकि किताब की जिल्द से लोगों का कारोबार रहता, अन्दर की विषय-वस्तु लेकर नहीं।

जबकि सभी मन ही मन कहा करते।

पार्थो के पिता जी कहते—'ये देखो, एक साल तो होने को आए। स्वदेश लौटने का समय हुआ है उसका। कहाँ, एक बार भी तो नहीं लिखा—'माँ पिताजी, लौट रहा हूँ। इतने दिनों बाद तुम लोगों के पास जाऊँगा, सोच कर बहुत अच्छा लग रहा है।....क्यों लिखेगा ? आकर उतरेगा जरूर अपने बड़े आदमी ससुर के घर। हमारे पास धर्म को साक्षी रख एक बार मिलने आएगा। जाने दो ठीक है। हमारे दिन कहाँ अटकते हैं ?

पार्थो सोच रहा है—'यह तो, मेरी यहाँ की मियाद खत्म हो गई। एक चिट्ठी तक न आई जिसमें मातृहृदय की व्याकुलता या पितृहृदय के गम्भीर स्नेह की झलक मिलती। और रूबी के माँ-बाप ? हर डाक उनकी व्याकुल उत्कंठा और उद्दाम उत्साह का परिचय वहन कर चिट्ठी ला रही है।....फिर ? फिर मैं किसके लिए उस उदासीनता की दीवाल पर पंख कूटूं ? नितान्त पराए की तरह ही मिलने चला जाऊँगा।'

पार्थो ने यही किया।

उस देश से लौट कर बहू और माल-असबाब के साथ संजय घोष के घर जा उतरा।

दूसरे दिन इस मोहल्ले में आने का विचार किया।

जब कल ही वहाँ जाने की सोचा है तो आज की शाम को काम में क्यों नहीं लगाते ?' रूबी ने उत्साह से कहा—'जरा छोटी बुआ के घर चलो न! वहाँ जाने के बाद से ही सुन रही हूँ फूफाजी बीमार हैं....एक काम निपट जाएगा।'

जैसा काम निपटाना ही उद्देश्य हो।

पार्थो अगर तुरन्त राजी हो जाता, रूबी शायद खुद ही कहती—'आज रहने दो। कल सब होगा। काफी टायर्ड लग रहा है।'

लेकिन पार्थो कह बैठा—'बाबा, फिर अब तुम्हारे फूफाजी के चंगुल में पड़ना होगा ? तीन घंटे से पहले क्या उठ पाएँगे ?'

पार्थो रूबी के छोटे फूफा को पहचानता है। फूफा जी दो-तीन बार योरोप, अमेरिका घूम आए हैं। उनके पास जा बैठे तो छुटकारा नहीं—एक ही किस्सा सौ दफा सुनना पड़ेगा और अब तो रूबी लोग नए-नए घूम कर आए हैं। रूबी लोगों ने क्या देखा है, उन्होंने क्या देखा था........वह तुलनात्मक कहानी क्या आसानी से खत्म होगी ?

इसीलिए पार्थो बोला—'आज बहुत टायर्ड लग रहा है। बस इसके बाद रूबी को रोक कर रखना आसान न था। अतएव पार्थो को सपत्निक निकलना पड़ा—पत्नी के फूफा के घर के उद्देश्य से।

उनका घर मनोहरपुकुर में था।

जिस मनोहरपुकुर में सोमा लोगों का घर है।

रूबी बोली—'फूफा जी बीमार रहते हैं। और कुछ ले जाने की जरूरत नहीं है, जरा ज्यादा फल-वल ले चलो और कड़ेपाक वाला संदेश।' जिस तरह से कहा उससे लगा ले जाना कर्तव्य है। उस कर्त्तव्य का पालन किए बगैर उपाय न था।

पार्थो ने जानबूझ नहीं किया था, फिर भी अचानक सोमा के घर के सामने कार झटका दे कर रुक गई।

रूबी चिन्तित होकर बोली—'क्या हुआ ?'

पार्थो कुछ न बोला। उसने दरवाजा खोला।

'मैंने कहा था ड्राइवर को ले चलो....'

रूबी की पूरी बात सुने बगैर ही पार्थो कार से उतर पड़ा और उस घर के सामने दिवेन्दु को देखा।

या देखने की घटना पहले ही घटित हो चुकी थी ?

उसे कार से उतर कर आगे बढ़ते देख दिवेन्दु भी बढ़ आया। पार्थो ने आशा की थी कि उसे देख कर दिवेन्दु शोर मचाता हुआ बढ़ आएगा, लेकिन देखा दिवेन्दु गम्भीर है।

इसके मतलब....ईर्ष्या।

पार्थो ने सोचा।

बड़ी गाड़ी से उतरते देखा, अच्छा नहीं लगा—और क्या? वरना निरुत्ताप स्वरों में पूछता—'कब लौटा तू?'

पार्थो भी गम्भीर हुआ।

बोला, 'आज ही सबेरे। और बता, क्या हाल-चाल है?'

दिवेन्दु बोला, 'हाल-चाल? कुछ सुना नहीं?'

पार्थो जरा चौंका।

सोचा, किसकी क्या खबर?

बोला, 'नहीं, यानी मैं अभी घर नहीं जा सका हूँ।'

'अभी घर नहीं गया है? ससुराल में उतरा है क्या?'

लगा दिवेन्दु ने व्यंग कसा।

या व्यंग नहीं....पार्थो ही के सुनने में गलती हुई है। पार्थो और भी ज्यादा होकर बोला—'सामान अधिक था। लेकिन कैसी खबर है?'

दिवेन्दु ने कहा, 'रहने दे, न हो बाद में ही सुनना।'

पार्थो की छाती धड़क उठी।

पार्थो ने सोचने की कोशिश की कि आखिरी चिट्ठी घर से कब आई थी। पार्थो बेहद डर गया।

क्षीण स्वरों में पार्थो ने पूछा, 'तू यहाँ कब आया?'

'मैं? मैं तो यहीं रहता हूँ।' दिवेन्दु ने कार की तरफ देख कर पूछा, 'गाड़ी में पत्नी है?'

'हूँ। तू यहाँ क्यों रहता है?'

'अरे भाई, तू तो कोई खोज-खबर रखता नहीं है। तू सोमा की बीमारी की बात जानता था? दीदी ने यह सुन कर सुइसाइड किया। यह देख कर टूटू अचानक सोमा से शादी कर बैठा....'

अचानक पार्थो ने दिवेन्दु के दोनों कन्धे जोर से पकड़ लिए। चिल्ला पड़ा, 'टूटू क्या कर बैठा?'

'और क्या कहूँ। उसका तो हर बात में गँवारूपन था ही। बोला—सोमा को कौन देखेगा, सोमा के इलाज का भार कौन लेगा, सोमा को उचित आराम कौन पहुँचाएगा? सोमा सहायता के दाने पर जीना नहीं चाहेगी। शादी करना ही बेस्ट है—इसी से दोनों की इज्जत बचेगी।'

पार्थो की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। पार्थो को लगा दिवेन्दु पागल-वागल हो गया है....गलत-सलत बक रहा है। इसीलिए चिल्ला कर बोला, 'उस बीमार से शादी कर ली टूटू ने ?'

'किया ही तो। इसीलिए मैं वहू को लेकर इसी घर में हूँ। सोमा की बूढ़ी दादी को कौन देखेगा ? इसके अलावा....' जरा लज्जित होकर बोला—'घर पर भी अशान्ति चल रही थी। मां के साथ वहू की पटती न थी, और मैं अलग घर किराए पर लूँ इतनी आमदनी कहाँ ?'

'इसके मतलब तुम्हें बिना पैसे का मकान मिला है।' पार्थो कठोर होकर बोला, 'तो फिर सोमा यहाँ नहीं है।'

दिवेन्दु ने धीरे से सिर हिलाया।

'घर पर रखा है टूटू ने या नर्सिंग होम-ओम में रखा है ?'

'नर्सिंग होम में भी नहीं, घर पर भी नहीं।'

दिवेन्दु खूब धीरे से बोला।

'घर पर भी नहीं, अस्पताल में भी नहीं। फिर कहाँ ? चेन्ज के लिए भेजा है ?'

दिवेन्दु उसके उत्तेजित चेहरे की तरफ देखता रहा। फिर दुःखी होकर बोला—'सोचा था यहाँ बीच रास्ते में कुछ नहीं बताऊँगा। खैर, जब सब कुछ सुन ही लिया है। कहीं भेजना नहीं पड़ा है, वह खुद ही चली गई है। सोमा मर गई है पार्थो, परसों सुबह। खूब अच्छी थी....आशा थी ठीक हो जाएगी। अचानक....।'

दिवेन्दु बात खत्म न कर सका।

गले की आवाज रुद्ध हो गई उसकी।

प्रतीक्षारत रूबी और कितनी देर तक धैर्य की परीक्षा दे सकती थी ?

बिना उतरे कब तक ताक-ताक कर देख सकती थी कि उसका पति रास्ते पर खड़े होकर, एक बनियान और लुंगी पहने भिखारी-से आदमी के साथ बातें करता जा रहा है।

'तुम्हें क्या देर लगेगी ?' खूब ठंडी आवाज में रूबी ने सवाल पूछा था—'तो फिर मैं ही ड्राइव करके चली जाती हूँ। तुम लोग बातें करो।'

'नहीं नहीं—ऐसा कैसे ? अरे नमस्ते....।' दिवेन्दु कह उठा—'बातें करने को अब कुछ नहीं है। पार्थो तू जहाँ जा रहा था, जा। बाद में फिर सही.... कलकत्ते में ही तो रहेगा ?'

धीरे से पार्थो ने सिर हिलाया।

'नहीं रहेगा ? वहीं मद्रास में ? कब जाना है ?'

'अगले हफ्ते....।'

'ओ ! अगर हो सके तो एक बार टूटू से मिलना । उस मोहल्ले जाएगा तो ?
....अच्छा भई !....नमस्कार !'

नमस्कार की तरफ देखे बगैर ही रूबी कार पर चढ़ बैठी और पार्थो के बैठते ही तीक्ष्ण स्वरों में बोली—'यहाँ तुम्हें काम था, यह बात पहले कह सकते थे !'

पार्थो ने कुछ नहीं कहा ।

रूबी फिर रूखी आवाज में बोली—'एक मरीज के घर जा रहे हो, नौ बजने वाला है । शायद जल्दी-जल्दी खा कर लेट जाते हैं ।'

पार्थो ने कुछ नहीं कहा ।

रूबी बिगड़ कर बोली, 'हुआ क्या तुम्हें ? उस आदमी ने क्या तुम्हें तुम्हारे बैंक फेल होने की खबर दी है ?'

पार्थो ने बात की । बोला, 'हाँ !'

तब तक वे रूबी के फूफा के दरवाजे पर आ पहुँचे थे । दरबान सलाम करके आ खड़ा हुआ ।

रूबी बोली, 'यह बास्केट उतार लो तो !'

उसने अच्छे-अच्छे फलों से भरी टोकरी उतार ली । आम, अनारस, सेव, सन्तरा ।

पार्थो को अचानक याद आया, 'कितनी बार सोचा था सोमा की दादी के लिए कुछ फल-वल ले जाऊँगा !'

पार्थो को भयंकर तकलीफ होने लगी । अपने कष्ट पर पार्थो को आश्चर्य ही हुआ । सोमा मर गई है, सुन कर भी कार चला कर वह चला आ सका और सोमा की दादी की बात सोच कर उसका मन दुःखी हो रहा है । इन ताजे भरपूर फलों की तरफ उसकी नजर नहीं उठ रही थी ।

●

